आरक्षण, सामाजिक न्याय, छात्रावास और नि:शुल्क प्राथमिक शिक्षा के जनक

राजर्षि छत्रपति श्री शाहूजी महाराज

एक संक्षिप्त जीवनवृत्त

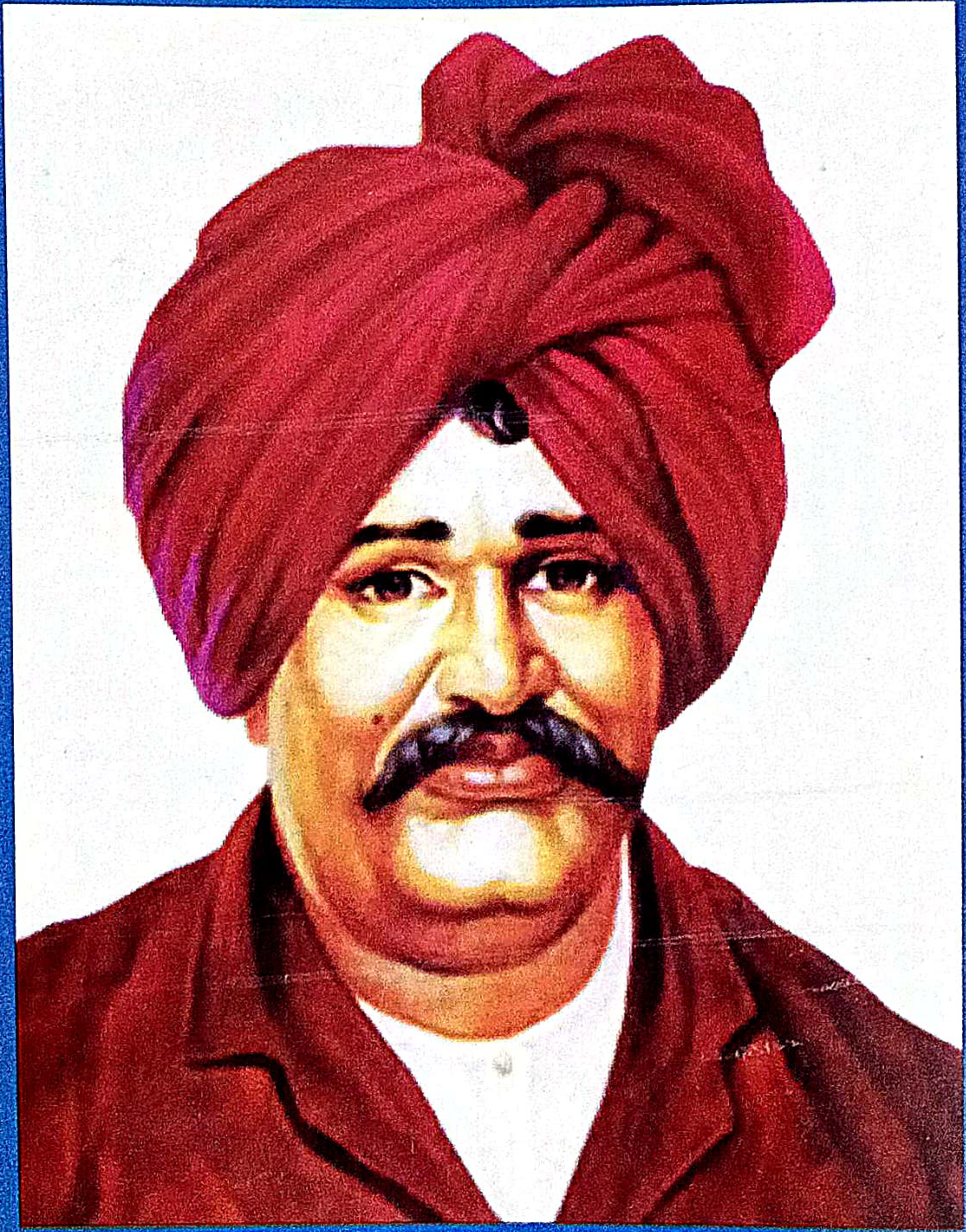

डॉ. आर.बी. वर्मा

जे.पी. पासवान

आरक्षण, सामाजिक न्याय, छात्रावास और

निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के जनक

राजर्षि छत्रपति श्री शाहूजी महाराज

एक संक्षिप्त जीवनवृत्त

लेखक

डॉ. आर.बी. वर्मा

जे.पी. पासवान

धम्मा प्रकाशन

16/12 त्रिलोकपुरी, दिल्ली-91

फोन : 09210122842, 7042559521

आरक्षण, सामाजिक न्याय, छात्रावास और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के जनक

राजर्षि छत्रपति श्री शाहूजी महाराज

एक संक्षिप्त जीवनवृत्त

लेखक

डॉ. आर.बी. वर्मा, जे.पी. पासवान

ISBN : 978-93-93375-09-4

प्रथम संस्करण : 14 अप्रैल 2023

सौजन्य से : माता सावित्री फाउंडेशन ट्रस्ट, गोरखपुर, शाखा कार्यालय गोण्डा, 146 आवास विकास कालोनी, पिन कोड–24002

सहयोग राशि : 50 रुपये

प्रकाशक : धम्मा प्रकाशन
16/12 त्रिलोकपुरी, दिल्ली–91
फोन : 09210122842, 7042559521
Email : dhammaprakashan@gmail.com

मुद्रक : आशीष प्रिन्टर्स, दिल्ली–110093

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

परम पूज्य पिता जी यशकायी

राम बहादुर वर्मा जी

को

अपने परम्परागत व्यवसाय से चिपके मत रहो जहाँ भी और जब भी अवसर मिले खेती-बाड़ी के काम से हटकर अन्य व्यवसाय अपनाओ। जहाँ तक सम्भव हो बच्चों को शिक्षा से मत रोको जितना भी सम्भव हो उन्हें सर्वोच्च शिक्षा दिलाओ। अपने कमजोर और बेसहारा भाइयों की मदद करो। अपने संस्कार स्वयं करो और अपना धन मंदिरों में बर्बाद मत करो'

शाहूजी महाराज

19 अप्रैल 1991 कानपुर

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तिका का शीर्षक 'आरक्षण, सामाजिक न्याय, छात्रावास और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के जनक राजर्षि छत्रपति श्री शाहू जी महाराज : एक संक्षिप्त जीवन वृत्त' छत्रपति शाहूजी महाराज के जीवन और व्यक्तित्व का संदेश देती है। संक्षेप में लिखी पुस्तिका अपने आप में शाहू जी महाराज के जीवन की प्रमुख घटनाओं को रेखांकित करती है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और तत्कालीन समाचार पत्रों से उनका विवाद, भारतीय इतिहास के अनछुए पहलू को उजागर करता है। प्रस्तुत पुस्तिका में डॉ. वर्मा के द्वारा ऐसे ही कई प्रकरणों जिनमें उनके जीवन में आईं समस्याएँ अल्पायु में ही माता पिता का देहावसान, परंपरागत नौकरशाही और अपने परिवार के लोगों से जूझना और पुनः युवा पुत्र का निधन आदि पर लेखनी चलाई गई है जिस पर अभी तक किसी की निगाह नहीं पड़ी या लेखकों के द्वारा कोई अनुसंधान नहीं किया गया। निश्चित रूप से प्रस्तुत पुस्तिका के माध्यम से देश के आम जनमानस को देश में जमीन से जुड़े नायकों के संघर्ष बारे में रूबरू कराया जा सकेगा।

इस पुस्तिका के लेखन द्वारा न किसी प्रकार का दावा है और न ही किसी जाति धर्म के व्यक्तियों को अपमानित करना और न किसी की भावनाओं को ठेंस पहुँचाना है। हमारा उद्देश्य केवल राजर्षि छत्रपति शाहू जी महाराज के क्रांतिकारी मानवतावादी कार्यों, वर्ण-व्यवस्था के द्वारा उनके कार्यों में डाले गए अवरोधों और प्रचलित मान्यताओं को उलट वास्तविकता से जनमानस को परिचित कराना व सुगमता से उपलब्ध कराना है। विस्तृत जानकारी के लिए आभारोक्ति में संदर्भित रचनाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

आभारोक्ति

प्रस्तुत पुस्तिका 'आरक्षण, सामाजिक न्याय, छात्रावास और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के जनक राजर्षि छत्रपति श्री शाहू जी महाराज : एक संक्षिप्त जीवन जीवन परिचय' शाहूजी महाराज के जीवन संघर्षों पर आधारित है। इस पुस्तिका में शाहूजी महाराज के जीवन वृत्त उनके संघर्षों और उनके कृत्यों को कम शब्दों में समाहित करने का प्रयास किया गया है। इस रचना में प्रधानतः आर एम नागभिड़े द्वारा रचित 'विद्रोही छत्रपति महाराज शाहू' और आचार्य मिंदर चौधरी जी के द्वारा रचित 'राजकीय सेवाओं में आरक्षण, अनिवार्य और निः शुल्क प्राथमिक शिक्षा एवं आधुनिक छात्रावास के जनक शाहूजी महाराज : एक परिचय' से अधिकांश तथ्य लिए गए हैं। श्री नागभिड़े जी महाराष्ट्र में मूल निवासी हैं अतः उनकी पुस्तक मराठी पुट लिए हुए है। अतः यहाँ से यत्र तट बिखरे हुए तथ्यों को एक सूत्र में पिरो कर सारगर्भित और रोचक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस कार्य में आचार्य मिंदर चौधरी, एडवोकेट एन.के. वर्मा, सविता वर्मा, भाई राम प्रसाद जी, भाई विक्रम जी और डॉ. डी.के. वर्मा साहब से बहुत सहयोग मिला। वस्तुतः डॉ. डी.के. वर्मा साहब के सहयोग और प्रोत्साहन से यह संभव हो सका। मैं हृदयतल से इन महानुभावों का और अन्य सहयोगियों का आभार करता हूँ जिनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग इस कृति में प्राप्त हुआ।

पुस्तिका का उद्देश्य किसी की भावनाओं को ठेस पहुँचाना नहीं है। यदि पुस्तिका किसी अंश से किसी की भावनाओं को ठेस पहुँचती है या भावनाएँ आहत होती है तो उसके लिए क्षति की सीमा तक हम क्षमा प्रार्थी हैं।

डॉ. आर.बी. वर्मा
जे.पी. पासवान

अनुक्रमणिका

1. समस्त राजकीय पदों पर 50% आरक्षण का आदेशः आरक्षण के जनक छत्रपति शाहूजी महाराज 11
2. हर गाँव-देहात में पाठशाला की स्थापना 13
3. उच्च पदों पर पिछड़ों की नियुक्ति 15
4. पिछड़ी जातियों के लिए छात्रावास : छात्रावासों के जनक 17
5. अछूतों के लिए अलग छात्रावास 19
6. शाहू जी महाराज के पूर्वज और कोल्हापुर 21
7. जन्म और बचपन 23
8. अनिवार्य और निः शुल्क शिक्षा 25
9. पिता का देहांत और संघर्षों की शुरूआत 27
10. पारिवारिक जीवन 29
11. समाज सेवा और शिक्षा के कार्य 31
12. वेदोक्त /पुराणोक्त विवाद और शाहूजी 33
13. विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून 35
14. अस्पृश्यों की हाजिरी प्रथा की समाप्ति : गुलामी से आजादी की ओर 37
15. शंकराचार्य की धर्म सत्ता को चुनौती 39
16. विरोध! चरित्रहनन और जान से मारने की धमकी 41
17. तिलक और शाहूजी के बीच संघर्ष 44
18. मंदिरों की भूमि पर सरकार का अधिकारः छोड़कर भागे पुरोहित 46
19. सर नेम का उपहार 48

20. कमजोर वर्गों को आहवान—अपने धार्मिक संस्कार स्वयं करें 50
21. पृथक निर्वाचक मंडल के लिए संघर्ष 52
22. समाज सुधार : अस्पृश्यता पर कानून बनाकर प्रतिबंध और विशेष प्रयास 55
23. आरक्षण : शाहूजी महाराज का संघर्ष 57
24. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के राजनैतिक गुरु और मार्गदर्शक 60
25. निर्वाण ;एक युग की समाप्ति 63

समस्त राजकीय पदों पर 50% आरक्षण का आदेश: आरक्षण के जनक छत्रपति शाहूजी महाराज

छत्रपति शाहूजी महाराज का यह सबसे क्रांतिकारी कदम था जिसने आने वाले समाज की दिशा और दशा बदल दी। संपूर्ण भारतीय इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ कि बिना किसी संघर्ष के ही किसी शासक ने अपने अधिकारियों में बहुजनों को बुला कर जगह दी हो। भारतीय इतिहास का यह स्वर्णिम काल खंड था जब किसी शासक ने समाज कल्याण का इतना बड़ा कदम स्वयं उठाया था। इसके लिए देश हमेशा के लिए उनका ऋणी रहेगा। 26 जुलाई 1902 का ऐतिहासिक दिन देश के इतिहास में उगने वाले उस सूर्य की तरह था जो आज अपनी आभा से देश और दुनिया को आलोकित कर रहा है। इस दिन कोल्हापुर नरेश छत्रपति शाहूजी महाराज ने क्रांतिकारी कदम उठाते हुए शासनादेश के जरिए राज्य की समस्त शासकीय सेवाओं में बहुजनों के लिए 50% पद आरक्षित कर दिए। यहीं से वह शुरूआत होती है जिस पर आधुनिक भारत की नीव पड़ी और जो आगामी शताब्दी की राजनीति का आधार बनी। उस समय वहाँ की नौकरशाही में शत प्रतिशत पदों पर ब्राह्मण समाज के लोगों का ही कब्जा था। सनातन हिन्दू धर्म के अनुसार तत्समय शिक्षा का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। आश्चर्य की बात है कि महाराजा के इस आदेश का कहीं से समर्थन प्राप्त होना तो दूर भयंकर विरोध हुआ। उनके इस आदेश का विरोध करते हुए श्री अभ्यंकर नाम के एक अधिकारी दरबार में आ गए और खुलकर विरोध किया कि यह आदेश गलत है और राज्य के हित में नहीं हैं। महाराज उस समय कुछ नहीं बोले और उन्होंने श्री अभ्यंकर को अगले दिन प्रातः अश्वशाला में आने का निर्देश किया कि वहीं पर आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा। अगले दिन नियत समय पर वह अश्वशाला पहुँचे। वहाँ उन्होंने सभी घोड़ों को देने वाले चारा दाना को एक जगह एकत्र करा दिया और सारे घोड़ों को बंधन मुक्त कर दिया। वहीं उनके सामने ही जो मजबूत और बड़े घोड़े थे उन्होंने दुलत्ती मार-मार कर

कमजोर और छोटी नस्ल की घोड़ों को भगा दिया और सारा चारा दाना खा गए। यह दृश्य देख कर महाराजा ने कहा कि देख लिया अभ्यंकर, आपने अब इन कमजोर घोड़ों का में क्या करूँ? यदि मैं इन्हें मरवा डालूँ तो क्या इससे अश्व और अश्वशाला मजबूत होगी। वर्ण-व्यवस्था में शिक्षा का जो **अधिकार केवल ब्राह्मणों को दिया गया है या उन्होंने जबरिया ले लिया है** वह देश और संपूर्ण मनुष्यता के लिए अभिशाप है। श्री अभ्यंकर मैं आपकी अमानवीय व्यवस्था को इस अभिशाप से मुक्ति दिलाना चाहता हूँ। अभ्यंकर से कुछ बोलते नहीं बना और वह चुपचाप वापस चले आए।

बाल गंगाधर तिलक जो बहुत बड़े स्वतंत्रता संग्राम सेनानी माने जाते है के साथ सभी ने इस निर्णय का विरोध किया। यहाँ तक कि अधिकारियों ने त्रुटिपूर्ण सूचना पहुँचाई कि पद रिक्त नहीं हैं। ऐसे में महाराज ने राजाज्ञा कराई कि सभी विभाग अपने कर्मचारियों की गणना कर लें जहाँ भी बहुजनों की संख्या 50% से कम है वहाँ ब्राह्मणों की नियुक्ति तब तक न की जाय जब तक वह 50% की सीमा नहीं पूरी कर लेते। उनके इस आदेश का भी राज्य और आस पास के सभी समाचार पत्र जो कि ब्राह्मणों के नियंत्रण में थे ने प्रबल विरोध किया, परंतु शाहूजी महाराज किसी दूसरी मिट्टी ही के बने थे। उन्होंने अपने आदेश पर पूरी तरह अमल कराया। उनके सख्त तेवर देख कर पुरोहित सहम गए और उनकी समझ में आ गया कि कोल्हापुर की गद्दी पर कोई साधारण राजा नहीं बैठा है।

हर गाँव-देहात में पाठशाला की स्थापना

शाहू जी महाराज का दूसरा सबसे क्रांतिकारी आदेश था राज्य के सभी गाँवों में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना। वर्ष 1913 में उन्होंने इस तरह का आदेश किया और इस कार्य के लिए 1 लाख रुपएं अनुदान के रूप में स्वीकृत किए। महाराज ने यह आदेश कर तो दिया परंतु, इसके क्रियान्वयन में अनेक व्यावहारिक समस्याएँ आईं। उस समय जो शिक्षक थे वह सब के सब ब्राह्मण थे और पुरोहित संवर्ग से थे और वर्ण-व्यवस्था की भट्ठी में से तप कर निकले हुए थे जो यह समझते थे कि महाराज का यह कार्य किसी काम का नहीं है। वह बेमन से शिक्षण कार्य करते थे और साथ ही गैर ब्राह्मणों से ऐसा व्यवहार करते थे कि पहले तो इस सारी कवायद का लाभ केवल ब्राह्मण समाज को ही मिले। किसी तरह से शूद्र समाज के बच्चे यदि आने भी लगें तो जल्दी से जल्दी उन्हें पढ़ाई के नाम पर मार पीट कर भगा दिया जाय या वह स्वयं भाग जाय। इस तरह महाराज जो भी नया काम बहुजन समाज के लिए करते थे उसका लाभ ब्राह्मण समाज पहले लेता था और वह लोग भरसक प्रयास यह करते थे कि शूद्र समाज के बच्चे यहाँ तक पहुँच ही न पाएँ। इस संवर्ग की यह नीति आज भी हर तरफ दिखती है जब ब्राह्मण समाज पिछड़ों के आरक्षण का खुलकर विरोध करता है। शूद्र समाज के परिवार आर्थिक रूप से अत्यंत विपन्न अवस्था में थे वह अपने बच्चो को भी अपने काम में लगाए रहते थे। बच्चों को स्कूल भेजने पर उनका नुकसान होता। साथ में पुरोहित समाज बरगलाने के लिए हर समय तैयार बैठा रहता था कि पढ़ लिख कर होगा क्या? करना तो खेती ही है। ऐसी दशा में शाहूजी महाराज ने निः शुल्क पढ़ाई को योजना बनाई और यह आदेश किया कि प्रत्येक विद्यालय में शूद्र समाज के 15 बच्चों की फीस माफ की जाएगी। इस योजना में कुछ ही समय के बाद यह जानकारी मिली की इस शुल्क मुक्ति के होते हुए भी शूद्र समाज के बच्चे पढ़ने नहीं आ रहे हैं और शुल्क मुक्ति का सारा लाभ पुरोहित समाज के लोग अपने को गरीब दिखा कर ले रहे हैं। ऐसे में

उन्होंने दोबारा यह आदेश किया कि 15 सीटों में से आधी सीटें वर्ष भर खाली रखी जाय। इस आदेश से शुल्क मुक्ति योजना का सार्थक प्रभाव पड़ा। शूद्र समाज के सामने समस्या यह थी कि वह कमाई करें या पढ़ाई करें। अतः इन विद्यालयों में निः शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। यहाँ हमें माननीय लालू प्रसाद यादव की चरवाहा विद्यालय की संकल्पना याद आती है कि समाज के बच्चे चारागाह में अपने जानवर छोड़ दें और पढ़ाई करें, छुट्टी होने पर अपने जानवरों को लेकर घर जाय। यह ऐसा आदेश था जिसे आगे चलकर भारत सरकार ने अपने मूल सिद्धांतों में शामिल किया।

शाहूजी महाराज के इस कार्य ने एक ही झटके में वर्ण-व्यवस्था को उखाड़ दिया और वर्ण-व्यवस्था के रक्षक चाह कर भी कुछ नहीं कर पाए। हमारे सारे धर्मग्रंथ चिल्ला चिल्ला कर कहते रहे कि केवल ब्राह्मणों को ही पठन पाठन का अधिकार है। अनिवार्य शिक्षा सनातन धर्म के विपरीत है। परंतु शाहूजी महाराज ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू कर वह स्तंभ इतने गहरे में में स्थापित किया था कि वह 100 साल के बाद ही हिल सका जब सरकार का शासनादेश हो गया कि आठवीं अर्थात उनके समय का वर्नाकुलर सबको मुफ्त में दे दिया जाय। किसी को फेल न किया जाय, अर्थात बिना पढ़े ही सबको पास कर दिया जाय।

उच्च पदों पर पिछड़ों की नियुक्ति

शाहूजी महाराज का यह मानना था कि राजकीय पदों पर जब तक पिछड़ों को नहीं लाया जाएगा तब तक उनको मजबूत नहीं बनाया जा सकता। 18 वीं सदी में इस तरह का विचार एक क्रांतिकारी मस्तिष्क की ही उपज हो सकती है। वर्ण-व्यवस्था की जकड़न में जड़वत हुए समाज में पिछड़ों अस्पृश्यों और जंगली जातियों को राजकीय पद देना वह भी भारतीय महाराजा के द्वारा अपने आप में अद्वितीय है। इसी नीति के तहत उन्होंने समाज के पिछड़े और कमजोर वर्ग के लोगों जिसमें मराठा और चमार प्रमुख थे की सरकारी पदों पर नियुक्त करने की परिपाटी प्रारंभ की। संपूर्ण भारतीय इतिहास में यह कार्य किसी राजा ने पहली बार किया था। उनके इसी कार्य का परिणाम था कि वर्ष 1894 में कुल 124 पदों में 18 पदों पर गैर ब्राह्मण अधिकारी कार्यरत थे वही वर्ष 1922 में कुल पदों 247 में से 160 पद पर गैर ब्राह्मण तैनात कर दिये जाते हैं। इस तरह से 26वर्षों में राजकीय पदों पर गैर ब्राह्मणों की संख्या 14.15% से बढ़ कर 64.7% हो जाती है। अर्थात 400% की वृद्धि हो जाती है। (विद्रोही छत्रपति महाराज शाहू पृष्ठ संख्या 129 एवं राजार्शी शाहू राजा व माणूस पृष्ठ 245)

वर्ष 1894 में जब शाहूजी महाराज ने कोल्हापुर का कार्यभार सँभाला तो कोल्हापुर राज्य की स्थिति अन्य देशी राज्यों जैसी ही थी। वहाँ पर अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश रेजिडेंट का ही शासन था। जैसा कि अन्य राज्यों में हुआ करता था, कि देशी ब्राह्मण अधिकारी, अंग्रेज अफसरों के साथ मिल कर शासन सूत्र अपने हाथों में कर मनमानी करते थे वैसी ही स्थिति कोल्हापुर की भी थी। ऐसी दशा में शाहूजी महाराज सबसे पहले पिछड़े समाज में पढ़े लिखों की खोज में लग गए जिसे शासन में उन्हें शामिल किया जा सके, और पुरोहितों के गठजोड़ को तोड़ा जा सके। **बहुजन समाज के लोगों को लिए बिना शासन सूत्र अपने हाथ में ले पाना संभव नहीं था। इस कार्य को शुरू करने के लिए उन्होंने वर्ष 1894 में डेक्कन**

एजुकेशन सोसायटी की स्थापना की। इस समिति के माध्यम से समाज के पढ़े लिखों की खोज की जाती थी और मेधावी छात्रों को आगे पढ़ने में सरकार की ओर से सहायता भी की जाती थी। इसी क्रम में श्री भास्कर राव बिठोजी जाधव जो कि मराठा समाज से थे और उन्होंने बी ए पास किया हुआ था को उप मुख्य सचिव कोल्हापुर सरकार में नियुक्त कर दिया। राज्य के हुजूर सेक्रेटरी का पद रघुनाथ व्यंकोजी सबनीस को दिया गया। इसी तरह राज्य के मुख्य अभियंता श्री शानन के अवकाश पर जाने बाद उनके स्थान पर बहुजन समाज के श्री दाजिराव विचारे को मुख्य अभियंता नियुक्त किया। महाराज के इन कार्यों को देख कर पुरोहित और अंग्रेज अधिकारी नाराज होने लगे और उनके विरुद्ध पत्रों के माध्यम से विष वमन करने लगे और इतने से काम नहीं बना तो त्यागपत्र देने लगे। महिला शिक्षा अधिकारी कुमारी एच लिटिल ने विरोध में अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। इस खाली हुए पद पर भी शाहूजी महाराज ने राधाबाई कृष्णराव केलकर की नियुक्ति कराई। उनके लोकप्रिय कार्यों के चलते महारानी विक्टोरिया ने उन्हें वर्ष 1895 में 'नाइट ग्रैंड कमांडर ऑफ द मोस्ट एक्जाल्टेड ऑर्डर ऑफ द स्टार ऑफ इंडिया' की पदवी से सम्मानित किया। इस सम्मान को देने के लिए महारानी विक्टोरिया की ओर से मुंबई के गवर्नर ने 18 सितंबर 1895 को पूना के राजकीय हाल में इस सम्मान से विभूषित किया। एक देशी राजा को इस तरह का सम्मान एक अभूतपूर्व घटना थी।

पिछड़ी जातियों के लिए छात्रावास : छात्रावासों के जनक

शिक्षा एक ऐसा संस्कार है जो मनुष्य को जानवरों से पृथक करता है। बोली और सभ्यता के अतिरिक्त अशिक्षित व्यक्ति और चतुष्पद जानवर के बीच शिक्षा और विशेष रूप से सामाजिक शिक्षा ही अंतर स्पष्ट करती है। यह मानवीय जीवन को सभ्य और सुसंस्कृत बनाती है यही ज्ञान का स्रोत, समृद्धि और शक्ति का मूल आधार है। सुदृढ़ समाज का आधार ही शिक्षा है। यह हमारे लिए अत्यंत दुख की बात है की हमारे ही समाज के पुरोहित वर्ग के द्वारा ऐसे नियम बना दिए गए थे कि समाज और देश की बहुसंख्यक आबादी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार ही नहीं था। समाज का बहुसंख्यक वर्ग बाकायदा वर्ण-व्यवस्था के कानून के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकृत ही नहीं था। मराठी में यह कहावत मशहूर थी 'कुनबी का दाना, ढेरों का गाना, और ब्राह्मणों का पढ़ना और पढ़ाना' शिक्षा केवल एक विशेष संवर्ग के लिए ही कानूनी तौर पर विहित की गई थी। केवल ब्राह्मण ही शिक्षा लेने और देने के लिए अधिकृत थे और वह खुले आम सभी के लिए शिक्षा का विरोध करते थे। तत्कालीन नेता बाल गंगाधर तिलक ने तो यहाँ तक कह डाला था कि बहुसंख्यक जनता के लिए शिक्षा पर धन खर्च करना राज्य के संसाधनों की बरबादी है और यह कर देने वाले लोगों के धन का अपव्यय है। शाहूजी महाराज ने इस सामाजिक धूर्तता को समझा और बहुसंख्यक जनता की शिक्षा के लिए विद्यालय खुलवाए। इस रास्ते में उन्होंने यह अनुभव किया कि मात्र विद्यालय ही शिक्षा व्यवस्था के लिए पर्याप्त नहीं हैं। विद्यालय के साथ-साथ विद्यार्थियों के लिए छात्रावास भी आवश्यक है, जिससे उन्हें भली प्रकार उच्च शिक्षा दिलाई जा सके। तत्समय जाति व्यवस्था इतनी मजबूत थी कि एक जाति का आदमी दूसरी जाति के हाथ का कुछ भी खाना पीना पसंद नहीं करता था। इसी कारण उन्हें लगभग प्रत्येक जाति के लिए अलग अलग छात्रावासों की स्थापना करनी पड़ी। अपने इसी मिशन को आगे बढ़ाते हुए एक

एक कर उन्होंने 23 छात्रावासों की स्थापना की। इनका विवरण निम्नवत है।

1. कोल्हापुर में राजकीय छात्रावास वर्ष 1896
2. मराठा छात्रावास वर्ष 1901
3. जैन छात्रावास वर्ष 1901
4. मुस्लिम छात्रावास वर्ष 1906
5. लिंगायत छात्रावास वर्ष 1907
6. मिस क्लार्क छात्रावास (अस्पृश्यों के लिए) वर्ष 1908
7. दैवज्ञ शिक्षा समाज हॉस्टल दिनांक 24.12.1908
8. नामदेव छात्रावास दिनांक 02 04.1911
9. पाँचाल ब्राह्मण छात्रावास वर्ष 1911
10. सबनीस प्रभु छात्रावास वर्ष 1912
11. सावित्री बाई गौड़ छात्रावास वर्ष 1915
12. इंडियन क्रिश्चियन छात्रावास वर्ष, 1915
13. आंर्य समाज छात्रावास वर्ष 1918
14. वैश्य समाज छात्रावास वर्ष 1918
15. ढोर चमार छात्रावास वर्ष 1918
16. वैदिक छात्रावास वर्ष 1919
17. सरदार छात्रावास वर्ष 1920
18. आर्य क्षत्रिय छात्रावास वर्ष 1920
19. देवांग कोष्ठी (बुनकर)छात्रावास वर्ष 1921
20. सुतार छात्रावास वर्ष 1921
21. प्रिंस शिवाजी मराठा फ्री हॉस्टल वर्ष 1920
22. नाभिक छात्रावास (शिव कंठी शेष समाज) वर्ष 1921
23. बोहारी समाज छात्रावास वर्ष 1921

शिक्षा के लिए इतने छात्रावासों की स्थापना भारतीय इतिहास में किसी दूसरे शासक ने नहीं की, इसीलिए कोल्हापुर को 'मदर ऑफ हॉस्टल्स' और शाहूजी महाराज को 'फादर ऑफ हॉस्टल्स' कहा जाता है। इस समय ब्राह्मण समाज ही नहीं कोई भी समाज दूसरे समाज के लोगों किसी के भी साथ उठना बैठना पसंद नहीं करता था। इसीलिए मजबूरी में उन्हें अलग-अलग छात्रावासों की स्थापना करनी पड़ी।

अछूतों के लिए अलग छात्रावास

वर्ण व्यवस्था के अनुसार शिक्षा केवल ब्राह्मणों के लिए ही विहित थी। यही कारण है कि तत्समय केवल ब्राह्मण ही शिक्षित थे सभी शिक्षित ब्राह्मण थे। साफ-साफ यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है। उस समय और आज भी किसी भी समाज का शिक्षा का स्तर ब्राह्मणों के बराबर नहीं है। उस समय भी ब्राह्मणों में शिक्षा का प्रतिशत 90 से अधिक था जबकि मराठों में यह स्तर मात्र 4 प्रतिशत था। मराठे अस्पृश्य नहीं थे तब उनकी यह स्थिति थी। यह तो स्वयं विचारणीय और कल्पनीय है कि जिस समाज की परछाई भी अपवित्र कर देती हो वहाँ शिक्षा का स्तर क्या होगा? जिसके हाथ का छुआ हुआ निषिद्ध हो उसे कौन पढ़ने देगा?

शाहूजी महाराज ने इसी समस्या के समाधान के लिए पृथक छात्रावास प्रणाली प्रारम्भ की। वह भली-भाँति जानते थे कि जब समाज में विभेद इतने गहरे है तो पृथक छात्रावास ही इसका उपाय हो सकता है। इस पर कार्य करते हुए उन्होंने विशेष रूप से अछूत छात्रों के लिए अलग छात्रावास खुलवाए इनमें से प्रमुख छात्रावासों का विवरण निम्नवत है।

1. नासिक में अस्पृश्य छात्रावास वर्ष 1920
2. सोंन तली कैम्प छात्रावास
3. रुकडी कैम्प छात्रावास
4. मिस क्लार्क छात्रावास 1908
5. आर्य समाज गुरुकुल वूड हाउस छात्रावास वर्ष 1911
6. ढोर चमार छात्रावास 1919
7. अस्पृश्य छात्रावास पंढरपुर वर्ष 1920
8. सोमवंशी डिप्रेस्ट क्लास बोर्डिंग हाउस नासिक वर्ष 1920और
9. चोखमेला बोर्डिंग हाउस

अस्पृश्य छात्रों को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने राजाराम हाई स्कूल और राजाराम विद्यालय दोनों में ही निःशुल्क शिक्षा और निः शुल्क प्रवेश का आदेश किया।

(हुजूर, ठराव नम्बर 662 तारीख 24/09/1911) के अनुसार इन स्कूलों में उनसे कोई शुल्क नहीं लिया जाना था। गौरतलब है एक ऐसा राजा जो इतना परोपकारी था परंतु वह हमारी व्यवस्था को रास नहीं आया। कारण वर्ण-व्यवस्था की घृणित व्यवस्था जो सीधे लूट मार पर आधारित है का अनियंत्रित रूप से दिलो दिमाग पर हावी होना।

अपने बेटे चिरंजीव शिवाजी के स्मरणार्थ उन्होंने 10,000.00 (दस हजार) रुपए की रकम अलग रखी थी जिसके ब्याज से अछूत छात्रों की छात्रवृत्ति की व्यवस्था की गई थी। इन अछूतों की दशा इतनी दयनीय थी कि जिन कामों में इन्हें महारत हासिल थी उनके लिए भी इन्हें जगह कदापि नहीं मिलती थी। समाज में को भी कुछ अच्छा था या हो सकता था वह सब इनके लिए निषिद्ध था। यहाँ तक कि हमारे विद्वान भी पूरी तरह से लूट मार पर आधारित व्यवस्था के ही पोषक थे। शाहूजी महाराज ने सबसे पहले इन जातियों के लोगों में उनके मजबूत पक्ष का पता लगाया। यह लोग बहुत ही बलिष्ठ, शिकार करने में अत्यंत निपुण और स्वभाव से ईमानदार थे अतः उन्होंने अपने व्यक्तिगत सेवक इसी समाज से रखे।

इन लोगों को उन्होंने मल्ल युद्ध कुश्ती और घुड़सवारी के लिए प्रेरित किया। पीढ़ी दर पीढ़ी शिकार का काम करते हुए यह लोग जन्मजात कुशल शिकारी होते थे। इनका निशाना अचूक होता था। शाहूजी महाराज ने अपने शिकार दस्ते में इन्हीं लोगों को रखा था। इसी क्रम में इस समाज की स्थिति को उन्नत बनाने के लिए पुलिस विभाग में इनकी भर्ती के लिए शासनादेश किया। 31 जुलाई 1911 को यह आदेश किया कि करवीर राज्य के 16 महारों को पुलिस विभाग में नियुक्त किया जाय। और यदि किसी सेवक को आठ माह तक किसी दूसरे गाँव में रुकना पड़े और दूरी 12 मील से ज्यादा हो तो उसे ढाई रूपए प्रति माह अतिरिक्त भत्ता दिया जाय।

तलाठी स्कूल में जो भी महार विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हों उन्हें रुपया 10.00 प्रतिमाह छात्रवृत्ति दी जाय। (17 अगस्त 1911 मुकाम कल्याण)

शाहू जी महाराज के पूर्वज और कोल्हापुर

भारतीय इतिहास में कोल्हापुर रियासत का नाम शाहूजी महाराज के नाम से जुड़े होने के कारण विशेष महत्व रखता है। छत्रपति शिवाजी ने जिस राज परंपरा की नींव रखी थी, कोल्हापुर रियासत उसी का एक हिस्सा है। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि हमारे बहुसंख्यक समाज में महाराष्ट्र में एक ही राज परिवार में दो ऐसे महापुरुषों ने जन्म लिया जिन्होंने भारतीय इतिहास को नया आयाम दिया। एक ओर जहाँ छत्रपति शिवाजी महाराज ने सर्व शक्तिशाली मुगल शासक औरंगजेब को नाकों चने चबवा दिए और उनके द्वारा खड़े किए गए साम्राज्य से लगातार 27 साल तक लोहा लेते हुए अंततः मुगल शासक की मृत्यु हो गई। वहीं दूसरी ओर इस मिट्टी में जन्मे शाहूजी महाराज ने सदियों से दमित शोषित मानवता को मानव जीवन जीने का अधिकार दिलाया। यह शाहूजी महाराज के द्वारा डाली गई नींव ही है जहाँ से महापुरुषों की वह श्रृंखला उत्पन्न हुई जिसके परिणाम स्वरूप आज हमारा देश मनुवाद की अमानवीय गुलामी से मुक्त हो सका।

सत्रहवीं सदी में छत्रपति शिवाजी महाराज के मराठी राजसत्ता की स्थापना के बाद से लेकर बीसवीं सदी तक इसमें बहुत उतार-चढ़ाव आए। छत्रपति शिवाजी महाराज के बाद इस राजवंश में एक ऐसा भी समय आया कि मराठों के आपसी टकराव का लाभ उठाकर राज्य के सचिव अर्थात नाना साहब पेशवा ने मराठा साम्राज्य पर प्रशासनिक और मानसिक कब्जा कर लिया जिसके चलते संपूर्ण साम्राज्य में भेद भाव, ऊँच नीच,अनाचार, अत्याचार से संबंधित मनुस्मृति का ही वास्तविक शासन पूरी लागू हो गया था। पेशवा शाही की स्थिति यह थी की उसने राजा को ही शूद्र घोषित कर दिया। इस समय मराठा सांम्राज्य का केंद्र बिंदु पेशवा का शहर पूना हो गया था। पेशवाओं के षड्यंत्रों से मराठा राजवंश की यह स्थिति हो गई थी कि शाहूजी महाराज के पहले 50 वर्षों तक कोई भी छत्रपति 20 वर्ष की उम्र भी नहीं पूरा कर पाया।

यहाँ की एक रियासत थी, जिसका नाम कागल था। कागल के

जागीरदार आबा साहब घाटगे थे। इनके बड़े अच्छे मित्रवत संबंध मुंबई के गवर्नर और ब्रिटिश रेजिडेंट तथा ब्रिटिश अधिकारियों से थे। उन्हीं के अच्छे मित्र स्टुअर्ट मिटफ्रेंड फ्रेजर भी थे, जो आगे चलकर शाहूजी महाराज के गुरु और सलाहकार बने।

कोल्हापुर में वर्ष 1871 में एक नई घटना घटी। मुंबई की अंग्रेज सरकार ने महादेव वासुदेव बर्वे नामक ब्राह्मण अधिकारी की नियुक्ति प्रशासक के रूप में कोल्हापुर में कर दी। महादेव वासुदेव बर्वे का व्यवहार इस तरह का था कि मानो ब्राह्मण सत्ता की अनियंत्रित स्थापना के लिए ही उसे भेजा गया हो। बर्वे ने केवल षड्यंत्र करने और मनुस्मृति की कठोरता बढ़ाने के अतिरिक्त और कोई कार्य ही नहीं किया। उसके इस व्यवहार से राज परिवार में काफी असंतोष पैदा हुआ। ब्राह्मण प्रशासक बर्वे ने अपनी सोची समझी साजिश के तहत राजा शिवाजी चौथे को पागल करार देकर राज्य से बाहर भेजने की योजना बनाई ताकि प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण किया जा सके। उसके इस प्रस्ताव की सहमति भी ब्रिटिश सरकार से मिल गई। परंतु रानी संकवार बाई और कागल के आबा साहब घाटगे ने इसका विरोध किया। आबा साहब जय सिंह राव घाटगे उस समय कागल के जागीरदार थे। वह भी बर्वे के इस षडयंत्र से दुःखी थे। उन्हें यह स्वीकार नहीं था कि बर्वे इस तरह की कार्यवाही करे। उन्होंने और रानी सकवार बाई ने ब्रिटिश सरकार को पत्र लिख कर बर्वे को हटाने की माँग जिसे एक मुकदमे की सुनवाई कर ब्रिटिश सरकार ने मान लिया और बर्वे को वहाँ से हटा कर आबा साहब घाटगे को राजप्रतिनिधि बना दिया गया।

यहीं से उस इतिहास की शुरूआत होती है जिसने देश को नया जीवन दिया और देश के बहुसंख्यक समाज को जीने की नई राह मिली। लंबी और गंभीर मानसिक बीमारी के चलते 25 दिसंबर 1883 को शिवाजी महाराज चतुर्थ की मृत्यु हो गई। शिवाजी की मृत्यु के बाद अप्रत्यक्ष रूप से कोल्हापुर राज्य की सत्ता आबा साहब घाटगे के हाथ में आ गई। चूँकि आबा साहब घाटगे कागल के जागीरदार थे और राज परिवार से संबंधित थे अतः शिवाजी चतुर्थ की मृत्यु के बाद ब्रिटिश सरकार की सहमति से उनके पुत्र यशवंतराव को महारानी आनंदीबाई ने दत्तक गोद लेने का निर्णय लिया। यही बालक यशवंत राव आगे चलकर शाहूजी महाराज के नाम से विख्यात हुए।

जन्म और बचपन

शाहूजी महाराज का बचपन का नाम यशवंतराव था। कोल्हापुर के राज महल में 26 जून 1874 को उनका जन्म हुआ था। उनके पिता आबा साहब घाटगे राजपरिवार से जुड़े थे और उस समय कागल रियासत के जागीरदार थे। यशवंत राव की माता का नाम राधाबाई था। यशवंत राव का बचपन कष्टों में ही बीता। जब वह मात्र तीन वर्ष के थे तभी उनकी माता का देहांत हो गया था। फलतः उनके पालन-पोषण के लिए पिता ने दूसरा विवाह किया। यशवंत राव की माँ के इतनी कम अवस्था में छोड़ कर चले जाने से उनके पिता आबा साहब जय सिंह राव घाटगे अत्यंत अवसाद में रहने लगे थे और इसी अवसाद के चलते वह अति मदिरापान के व्यसनी हो गए थे। दूसरे विवाह के उपरांत भी उनकी मदिरापान की लत नहीं छूटी और दूसरी ओर यशवंतराव को विमाता का सौतेला व्यवहार भी झेलना पड़ा। इसी कारण वह अत्यंत गंभीर स्वभाव के थे। उन्हें गरीबों और बच्चों का दुख देखा नहीं जाता था। कोल्हापुर के राज प्रांगण में 17 मार्च 1884 को विधिवत दत्तक विधान पूर्ण हुआ और यशवंतराव राज्य के शासक बने। दत्तक विधान के समय ही महारानी आनंदीबाई ने उनका नाम शाहूजी छत्रपति रखा। उस समय शाहूजी महाराज की उम्र मात्र 10 साल ही थी। शाहूजी महाराज के राज्यारोहण के बाद उनकी शिक्षा की विशेष व्यवस्था वहाँ के राजनैतिक प्रतिनिधि कर्नल रीव्स के द्वारा सुझाई गई और उसी के अनुसार उन्हें 1886 में राजकोट के राजकुमार महाविद्यालय में प्रवेश दिया गया। अपने तीन और साथियों के साथ शाहूजी राजकोट के महाविद्यालय में दाखिल हुए और उनकी शिक्षा प्रारंभ हुई। इस बीच उन्हें चार महीने भी नहीं हुए थे कि दिनांक 20 मार्च 1886 को उनके पिता की मृत्यु हो गई। आनन फानन में शाहूजी कोल्हापुर लौटे। शाहूजी की माता राधाबाई का देहांत पहले ही हो चुका था जब वह मात्र तीन साल के थे, और अब मात्र बारह वर्ष की उम्र में पिता का छत्र भी ऊपर से उठ गया। इस प्रकार की विषम परिस्थितियों में शाहूजी महाराज ने राजकोट

महाविद्यालय की शिक्षा वर्ष 1889 में पूर्ण की। इसके बाद उनकी शिक्षा धारवाड़ में हुई जिसके शिक्षा प्रमुख स्टुअर्ट मिटफोर्ड फ्रेजर थे। श्री फ्रेजर एक नेक दिल और दयालु अफसर थे वह सहायक कलेक्टर और मजिस्ट्रेट का पद सँभाल चुके थे। उन्होंने महाराज की शिक्षा और शिक्षा के साथ देश के भ्रमण की योजना बनाई जिससे महाराज को देश की जमीनी हकीकत का पता चल सके। चार साल तक शाहूजी महाराज की शिक्षा धारवाड़ में चली। दिनांक 2 अप्रैल 1894 को ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लॉर्ड हैरिस ने शासन सूत्र शाहूजी महाराज के हाथों में हस्तगत कर दिया।

अनिवार्य और निः शुल्क शिक्षा

आज के 120 साल पहले महाराजा श्री शाहू जी का यह पक्का विश्वास था कि शिक्षा से ही समाज का उद्धार हो सकता है। अतः समाज में शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने अथक और अनवरत प्रयास किए। उनका एक प्रयोग असफल हो जाता तो वह तुरंत उसे बंद कर उसमें सुधार कर नया प्रयोग शुरू कर देते। प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए उन्होंने हर गाँव में पाठशाला की योजना प्रारंभ की। प्रत्येक गाँव में पाठशाला खोलना एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी निर्णय था। इसके क्रियान्वयन में आर्थिक समस्या सामने आने लगी। राजकोष में इतना धन नहीं था कि उससे प्रत्येक गाँव में स्कूल खोला जा सके। फिलहाल कतिपय गाँवों जहाँ की जनसंख्या 500 से अधिक थी वहाँ विद्यालय खोल कर सभी के लिए शिक्षा योजना की शुरूआत कर दी गई और इस कार्य के लिए उन्होंने रुपए 1.00 लाख की व्यवस्था रखी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है उस समय वर्ण-व्यवस्था अपनी पूरी कठोरता के साथ लागू थी। परंपरागत रूप से पढ़ने और पढ़ाने वाले दोनों केवल ब्राह्मण ही हुआ करते थे। वर्ण-व्यवस्था के इनबिल्ट कानूनों के अनुसार ब्राह्मण वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्णो को पढ़ने अधिकार नहीं था और इसको लागू कराने वाले ब्राह्मण ही थे। राजवंशों की बात अलग है। उनकी तुलना हम जन सामान्य से नहीं कर सकते हैं। उनके प्रचार का दुष्प्रभाव जनमानस पर इस कदर हावी था कि बहुसंख्यक जनमानस का यह मानना था कि पढ़ना लिखना अपना काम नहीं है। वर्ण-व्यवस्था के अनुसार जिसे जो कार्य दिया गया था वह उससे आगे बढ़ने की सोच भी नहीं पाता था।

मराठा समाज के बच्चों और उनके अभिभावकों को प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रयास किए गए जिसमे प्रभातफेरी निकालना भी शामिल था। परंतु अपेक्षित परिणाम न आते देख उन्होंने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य और निः शुल्क कर दिया। परंतु वह जानते थे कि यदि इसे ऐच्छिक रखा गया तो केवल 10 विद्यालयों की स्थापना ही हो पाएगी। अतः उन्होंने एक ही झटके

में आदेश कर समस्त मंदिरों का अधिग्रहण कर लिया, और मंदिर परिसर में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना का आदेश कर दिया। शाहूजी महाराज का यह आदेश एक कालजई और महान क्रांतिकारी आदेश था। यदि इस फार्मूले का उपयोग आगामी शासकों ने किया होता तो हम आज फ्रांस और ब्रिटेन से पीछे नहीं होते। मंदिरों का अधिग्रहण एक ऐसा आदेश था जिसकी बराबरी आज तक भारतीय इतिहास में कोई शासक नहीं कर पाया है।

मंदिरों में स्कूलों की स्थापना हो गई। तत्कालीन ब्राह्मण संगठनों और समाचार पत्रों ने अनिवार्य और निः शुल्क शिक्षा का कड़ा विरोध किया और लिखा कि यह राज्य के संसाधनो की बबार्दी है। ठीक इसी समय राजा राम कॉलेज का एक प्रकरण चल रहा था जिसमें धनाभाव के चलते राजा राम कॉलेज को बंद कर दिया गया था। केसरी जैसे समाचार पत्र इस घटना की यह कह कर आलोचना कर रहे थे कि छोटे बच्चों के लिए बड़े बच्चों की पढ़ाई रोकने का क्या मतलब है। (उस समय अजीब मूर्खतापूर्ण, बौद्धिकता फैली हुई थी–जब छोटे बच्चे पढ़ेंगे ही नहीं तो बड़े बच्चे क्या ब्रम्हा के मुख से पैदा हो कर आ जाएंगे?) मजे की बात यह है कि वह स्वयं तो अपने स्तर से कोई प्रयास भी नहीं कर रहे थे। मंदिरों के पास अथाह दौलत थी। उन्होंने कभी यह नहीं कहा कि राजा राम कॉलेज के लिए मंदिरों और बड़े सामंतों को आगे आना चाहिए। उनका काम ही आलोचना करना था। मानो आलोचना करने का उन्हें पैदायशी विशेषाधिकार प्राप्त हो। अनिवार्य शिक्षा का यह कहकर भी विरोध किया गया कि जो पढ़ाना नहीं चाहते उनके लिए राज्य के संसाधनों को व्यय करना मात्र फिजूलखर्ची है। क्या जमाना था! अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को हमारे समाचार पत्र फिजूलखर्ची बता रहे थे। मतलब बौद्धिक दिवालियेपन के सारे संसाधन मौजूद थे। उसी माहौल में शाहूजी महाराज को कार्य करना था।

आज भी शाहू जी महाराज के द्वारा किए गए कार्यों का प्रतिफल हमें पूरे महाराष्ट्र में दिखाई पड़ता है। हमें वहाँ गली मोहल्लों में विद्यालय और छात्रावास मिल जाते हैं।

पिता का देहांत और संघर्षों की शुरूआत

महापुरुषों का जीवन अपने आप में हम सब के लिए उदाहरण की तरह होता है। शाहू जी महाराज की माताजी का देहांत उस समय ही हो गया था जब वह तीन वर्ष के थे, अर्थात उन्हें अपनी माँ का चेहरा भी याद नहीं रहा होगा। व्यक्ति के लिए इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण और क्या हो सकता है? ऐसी कई घटनाएँ महाराज के जीवन में हुई लेकिन महाराज किस मिट्टी के बने थे यह उनका व्यक्तित्व बताता है। मात्र बारह वर्ष की आयु में जिसमे हमें ठीक से अपना परिचय देना भी नहीं आता उनके पिता भी चल बसे। अर्थात बारह वर्ष की उम्र तक माता पिता दोनों में से कोई भी नहीं था उनके पास। पास कौन थे, धूर्त और आपराधिक प्रवृत्ति वाले पुरोहित। ऐसे में आश्चर्य होता है कि वह इतने शक्तिशाली शासक हुए कि उन्होंने वर्ण-व्यवस्था की चूलें हिला दीं।

राजकोट में महाराजा की शिक्षा वर्ष 1889 में संपन्न हुई। इसके उपरान्त आगे की पढ़ाई के लिए वह धारवाड़ के महाविद्यालय के लिए रवाना हुए। यहीं से उनकी शिक्षा व्यवस्था की कमान सर स्टुअर्ट फ्रेजर के हाथ में आई। सर फ्रेजर उस समय की आई.सी.एस. सेवा के अधिकारी थे और अधिकारी से अधिक वह बहुत अच्छे आदमी थे। महाराज के आगे के व्यक्तित्व पर सर फ्रेजर की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। आगे के समय में सर फ्रेजर उनके शिक्षक और, सलाहकार नहीं रहे वरन उनका कद उनके पिता के सम्तुल्य था। 02अप्रैल 1894 में अंग्रेज सरकार ने कोल्हापुर के शासन सूत्र महाराज के हाथों में सौंप दिए। शाहूजी महाराज सत्ता में आते ही स्वयं निर्णय लेने लगे। यहीं से शुरूआत होती है उनके सामाजिक और सांस्कृतिक संघर्ष की। यहीं से वर्ण-व्यवस्था के क्रूर पंजों में जकड़े हिंदू समाज को 'मानवता' नाम से एक नया परिचय मिला, और दबे कुचले लोगों को जीने का नया अवसर मिला। महाराज के इसी आदत ने पुरोहितों और अधिकारियों के कान खड़े कर दिए। अब तक तो यही होता आ रहा था कि शासन करना नीचे वाले लोगों का काम है।

राजाओं को इन सब कार्यों से क्या मतलब? और सदियों से यही होता भी आ रहा था हिंदू व्यवस्था में यह साफ-साफ बताया भी जाता था कि

शासक का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करना। इसी वर्ण-व्यवस्था में सारा षडयंत्र छिपा हुआ है। इसे शाहूजी महाराज ने बड़ी शिद्दत से महसूस किया और इसी कारण वह वर्ण-व्यवस्था पर आधारित निर्णयों का विरोध करते थे। इसी विरोध के कारण स्वाभाविक ही है कि उन्हें पुरोहितों और अधिकारियों दोनों के विरोध का सामना करना पड़ा। पुरोहित और अधिकारी दोनों ही संवर्गों में एक ही वर्ग विशेष अर्थात ब्राह्मण संवर्ग का ही बोलबाला था। मात्र इतना ही नहीं राज्य के सचिवालय के शत प्रतिशत पदों पर इसका ही कब्जा था। जब साफ-साफ विधान में ही लिखा हुआ था, कि सभी नागरिकों को मनुस्मृति के अनुसार ही रहना है। अर्थात सारी सत्ता ब्राह्मणों के हाथ में ही रहनी थी यह विधान था और सभी को उनका सेवक बन कर ही रहना था, तो क्या आदेश करना और क्या उसका पालन करना। परंतु इतना बड़ा अन्याय महाराज कैसे बर्दाश्त कर लेते, वह लग गए पाठ पढ़ाने। अब उस समय उनके माता पिता तो साथ थे नहीं, यदि वह होते तो शायद पुरोहित समाज इतने षड़यंत्र नहीं कर पाता। उनका अनुभव काम आता। परंतु इस समय वह अकेले थे। उनकी माता और परिवार की महिलाओं को पुरोहितों ने पूरी तरह जकड़ रखा था। वह केवल पुरोहितों की भाषा ही जानती थीं। इस तरह उन्हें दोहरी मेहनत करनी पड़ती थी। समाज के कमजोर वर्गों के लिए वह जो आदेश करते उसको असफल करने के लिए धूर्त पुरोहित समाज लग जाता था वहीं राज महल की महिलाएँ उन्हीं पुरोहितों का समर्थन करती थीं। महाराज का पूरा जीवन इसी संघर्ष में व्यतीत हो गया। आज हम लोग यदि वर्ण-व्यवस्था में सिर उठा कर जी रहे हैं तो उसके पीछे शाहूजी महाराज का संघर्ष समाहित है।

पारिवारिक जीवन

दिनांक 01 अप्रैल 1891 को बड़ौदा के गुणाजी राव खानविलकर की कन्या लक्ष्मी बाई के साथ शाहूजी महाराज का विवाह हुआ। इस समय महाराजा की उम्र मात्र 17 वर्ष थी और लक्ष्मी बाई की उम्र मात्र 11 वर्ष। उनके पिता का देहांत चार वर्ष पहले ही हो चुका था। विवाह के तीन वर्ष के बाद कोल्हापुर महाराज के महल में 10 मार्च 1894 में पहली कन्या शिशु ने जन्म लिया। जिस राजवंश ने पिछले 50 सालों से पालना न झुलाया हो उसे कन्या रत्न की प्राप्ति की कितनी खुशी होगी इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। पुत्री के जन्म के 20 दिन के बाद करवीर रियासत भी महाराजा के हाथ में आ गई। इससे कन्या रत्न की प्रसन्नता चौगुनी हो गई। माता-पिता ने बड़े स्नेह से पुत्री का नाम रखा राधाबाई। शीघ्र ही दूसरी कन्या रत्न की प्राप्ति राज महल को हुई इनका नाम आऊ बाई रखा गया था परंतु दुर्योग से इस कन्या की अल्पायु में ही अकाल मृत्यु हो गई। 31 जुलाई 1897 को राजमहल को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। इस अवसर पर पुत्र राज्य में इतनी खुशियाँ मनाई गई की करवीर राज्य भी उसके सामने छोटा पड़ने लगा। राजा राम नाम रखा गया इस बच्चे का और आगे चलकर यही राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इसके बाद पुनः 15 अप्रैल 1899 को दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई इसका नाम रखा गया शिवाजी। इस पाँच या छह वर्ष में राजमहल बच्चों की किलकारियों से गूंजने लग। परन्तु इस तरह अत्यंत कम समय में प्रसव पीड़ा होने कारण महारानी को स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयाँ होने लगीं। बहुत इलाज हुआ परंतु वह स्वस्थ नहीं हो सकीं। उनकी स्थिति एक बीमार की ही बनी रही। यह भी हो सकता है कि यह भी पुरोहितों की एक चाल रही हो। जब दुश्मन घर में ही मौजूद है तो कुछ भी असंभव नहीं होता है। उसका उद्देश्य था किसी तरह महाराज पर काबू पाना अपने इसी उपक्रम में उनके समक्ष कम वय की एक सुंदर महिला लाई गई। महाराज को बहुत झटका लगा उन्होंने अपने साथियों को करारा जवाब देते हुए कुछ कहा तो नहीं परंतु उस महिला का विवाह उसी की उम्र के अपने एक युवा अधिकारी से करा दिया। और इस काम में जो भी व्यय

आया उसे स्वयं वहन किया। महाराजा यह अच्छी तरह समझते थे कि महल के इस गुट के लोग उनके पीछे पड़े ही रहेंगे और हो सकता है कि कोई नया षड्यंत्र कर बैठें इसीलिए उन्होंने नर्तक कुल की प्रौढ़ महिला जिसकी उम्र 40 के आस पास ही रही होगी को उप पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया।

कितनी महानता थी अपने महाराजा के मन में कि युवा महिला का विवाह उसकी उम्र के अफसर से करा दिया, और राजपरंपरा को किनारे रख प्रौढ़ वय की नर्तकी को स्वीकार किया। बावली बाई नाम था इनका, बिल्कुल महाराजा के जैसा ही आचार व्यवहार था इनका। विनम्रता की प्रतिमूर्ति, क्रोधित होते, झल्लाते, चिढ़ते हुए तो किसी ने देखा ही नहीं उनको। अपने व्यवहार से शीघ्र ही उन्होंने सबका मन जीत लिया। दयालुता उनके रग रग में बसी थी बिल्कुल महाराज की तरह उदारता उनमें कूट कूट कर भरी हुई थी। महाराज और बाबली बाई में अपने समान व्यवहार के चलते बहुत प्रेम था। बावली बाई की उम्र अधिक नहीं थी। वह बीमार पड़ी तो उठ नहीं पाई। बावली बाई की शव यात्रा निकाली गई। सोनतली में शमशान सी शांति छाई हुई थी सोनतली से कोल्हापुर का पाँच मील का फासला हजारों लोगों से भरा हुआ था। बावली बाई इतनी लोकप्रिय थी कि सब को उनमें अपनी माँ ही दिखाई पड़ती थी। ऐसी शोभायात्रा बहुत ही कम महिलाओं को प्राप्त होती है। बावली बाई के बाद में तानी बाई महाराज के जीवन में आई। तानी बाई एक प्रसिद्ध गायिका थी। जैसा कि पहले ही प्रसंग आया है कि शाहू जी महाराज जानते थे कि मुझे अकेला देखकर महल की पुरोहित मंडली को षड्यंत्र करने का अवसर न मिले अतः उन्होंने तानी बाई की योग्यता देखकर उन्हें उप पत्नी के रूप में स्वीकार किया। तानी बाई जाति की सुनार थीं। उनके निवास के लिए बने महल को आज भी सोनार बांग्ला के नाम से जाना जाता है।

शाहूजी महाराज जान बूझकर ऐसा करते रहे और पुरोहित संवर्ग से पूरी तरह सजग थे तभी वह उस गलती से बच पाए जो गलती आगे चलकर बाबा साहब और हमारे समाज के अन्य अधिकांश महापुरुषों और नेतृत्वकर्ताओं से हो गई। भारतीय इतिहास गवाह है कि हमारे देश के मात्र दो महापुरुष ही इस श्रेणी में आते हैं। भगवान बुद्ध और शाहूजी महाराज, जिन्होंने मानवता के लिए अपना सुख और ऐश्वर्य त्याग दिया और पूरा जीवन देश और मानवता की सेवा में अर्पित कर दिया।

समाज सेवा और शिक्षा के कार्य

वर्ष 1894 में जब शाहूजी महाराज ने सत्ता की बागडोर सँभाली तो उन्होंने जनता की वास्तविक स्थिति से रूबरू होने के लिए रियासत का भ्रमण करना शुरू किया। वह अक्सर समय मिलने पर या सुबह के समय सैर पर निकलते तो जंगलों में नहीं वरन गाँवों में जाते किसानों के खेतो में जाते उनसे बात चीत करते उनका हाल जानते। उनके इस प्रयोग से उन्हें सामान्य राजकाज की वास्तविकता का पता चला। उन्हें यह पता चला कि राज्य में 600 मुकदमें अनिर्णीत पड़े हैं। उन्होंने पहला काम इन मुकद्दमों का निपटारा करने से प्रारंभ किया। उन्होंने नियम बना दिया कि वह प्रतिदिन 6 मामले निस्तारित करेंगे। उनके हिसाब से ऐसा करने से यह मुकद्दमे धीरे धीरे कम होने लगे।

ऐसे ही महाराज कुलकर्णी नामक समस्या से वाकिफ हुए और अंततः उसे समाप्त कर तलाठी की नियुक्ति की। शाहूजी महाराज के द्वारा राज्य में शिक्षा की उन्नति के लिए जो कार्य किए गए संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है–

1. **राज्य में शिक्षाधिकारी के पद को उच्चीकृत करना**
2. **प्रतिभाशाली छात्रों को शिक्षावृत्ति देना**
3. **सभी विद्यालयों में कमजोर वर्ग के 15%छात्रों का शुल्क माफ करना**
4. **स्कूल पंच पद्धति को मजबूत करना**
5. **वेतन और परीक्षा के आधार पर शिक्षकों की नियुक्ति की प्रणाली प्रारंभ करना**
6. **शिक्षक प्रशिक्षण की शुरूआत करना**
7. **दिल्ली दरबार पटेल स्कूल की स्थापना**
8. **सत्यशोधक स्कूल की स्थापना**

शाहूजी महाराज का यह कालजई कार्य उनकी क्रांतिकारी सोच और

मानवता के प्रति उनके दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है। इस समय और आज भी हमारे समाज में माँगलिक कार्यों में धर्म विधि कैसे पूरी की जाय। यह क्षेत्र अभी तक केवल ब्राह्मणों के ही एकाधिकार में था। जिसका पूरा और अनियंत्रित फायदा पुरोहित समाज उठाता था। इसका रास्ता निकालने के लिए इन स्कूलों की स्थापना की गई। यह ऐसा कदम था जिसने वर्ण-व्यवस्था के मर्म पर चोट की।

इस स्कूल की शुरूआत 1913 में की गई। अक्टूबर 1919 में उन्होंने आदेश कर महिलाओं की शिक्षा को निः शुल्क बना दिया। उन्होंने आदेश में स्पस्ट किया कि छात्राओं की शिक्षा का पूरा व्यय राज्य वहन करेगा। महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए शिक्षावृत्ति की योजना बनाई और पाँच बेटियों जिनके पिता उन्हें मुंबई भेजने के लिए तैयार हो गए थे को सम्पूर्ण राजकीय व्यय पर उच्च शिक्षा के लिए सेंट कोलंबस गर्ल्स हाई स्कूल मुंबई भेजा गया और 500.00 रुपया अनुदान भी दिया गया (दिनांक 05 जनवरी 1920)। इसी क्रम में महाराज के द्वारा बहुत सी संस्थाओं को अनुदान दिया गया। इनमें से प्रमुख संस्थाएँ और उनको दी गई सहायता का विवरण निम्नवत है।

1. मराठा छत्रपति हॉस्टल पुणे को रुपए 3000.00 का दान और पाँच वर्ष तक प्रति वर्ष रुपए 1000.00 का दान,
2. डेक्कन एजुकेशन सोसायटी को रुपए 5000.00 का दान,
3. छत्रपति ताराबाई मराठा छात्रावास को वर्ष 1892 में रुपए 22000.00 का दान,
4. डेक्कन एजुकेशन सोसायटी को प्रतिमाह रुपए 450.00 का दान,
5. उदाजी मराठा विद्या हॉस्टल नासिक को रुपए 19200.0 का दान, 21 सितंवर 1920, इसी संस्था को पुनः 13 फरवरी 1920 और 15 फरवरी को रुपए 10,000.00 का दान,
6. डिप्रेस्ड क्लास हॉस्टल को रुपए 5,000.00 का दान,
7. पंढरपुर में अस्पृश्य हॉस्टल को प्रतिमाह रुपए 1350.00 का दान।

वेदोक्त /पुराणोक्त विवाद और शाहूजी

आइए पहले जान लेते हैं कि वेदोक्त और पुराणोक्त विवाद है–क्या? शाहूजी महाराज, शिवाजी महाराज के वंशज थे। शिवाजी महाराज जैसे प्रतापी शासक जिसने औरंगजेब को नाकों चने चबवा दिए और नियंत्रण नहीं कर पाया, को भी ब्राह्मण समाज के लोगों ने शूद्र माना। निकृष्टता की और इससे अधिक पराकाष्ठा और क्या हो सकती है कि इतने प्रतापी शासक को भी शूद्र माना जाय। शाहूजी महाराज, शिवाजी महाराज के वंशज थे अतः इन्हें भी पुरोहितों ने क्षत्रिय नहीं माना। उनके नियमों के अनुसार केवल ब्राह्मण और क्षत्रियों को ही यह अधिकार है कि उनके अनुष्ठानों में वेदों के मंत्रों का पाठ किया जाय। शेष वर्णों के लिए वेद मंत्र विहित नहीं हैं। शेष वर्णों अर्थात शूद्रों के लिए पुराणों के मंत्र ही विहित हैं। तत्कालीन ब्राह्मणों के अनुसार शिवाजी और शाहूजी दोनों ही मराठा अर्थात शूद्र थे अतः उनसे संबंधित अनुष्ठानों में वेद मंत्रों का पाठन नहीं हो सकता था। उनके अनुष्ठानों में पुराणों के मंत्रों का पाठ ही हो सकता था। अब चूँकि शाहूजी महाराज कोई मारियल शासक तो थे नहीं कि ऐसी अभद्रता बर्दाश्त कर लेते। वह लग गए इन्हें सबक सिखाने,यही है वेदोक्त विवाद।

शाहूजी महाराज रोज पूजा पाठ किया करते थे और मंदिरों में जाया करते थे और कुछ निश्चित अवसरों पर पंचगंगा में स्नान के लिए भी जाते थे। ऐसे ही एक दिन शाहूजी महाराज पंचगंगा में स्नान के लिए गए हुए थे, उनके साथ में उनके भाई बापू साहब घाटगे, मामा खानविलकर और अन्य लोग भी थे। उनके साथ मंत्रोच्चार के लिए नारायण नामका पुरोहित और राजाराम शास्त्री नाम के एक सहयोगी भी थे। नारायण पंडित कभी कभी स्वयं बिना स्नान किए ही महाराज के स्नान विधि को पूर्ण कराता था। इस दिन भी वह बिना स्नान किए ही मंत्रोच्चार कर रहा था। राजाराम शास्त्री ने पूछा कि वह पुराणोक्त पाठ क्यों कर रहा है? नारायण पंडित ने उत्तर दिया कि शूद्रों के लिए वैदिक मंत्र विहित नहीं हैं और स्नान करने की भी जरूरत नहीं है।

नारायण पंडित शाहूजी का नौकर था। एक नौकर ऐसा जवाब देगा उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। सर्वाधिकार संपन्न होते हुए भी वह उस समय शांत बने रहे। दरबार में पहुँच कर उन्होंने उसे कोड़े से पिटवाया और नौकरी से निकाल दिया।

मराठे क्षत्रिय हैं या शूद्र यह पृथक प्रश्न था। वेदोक्त धर्म विधि का अधिकार या पुराणोक्त धर्मविधि का यह राजा का प्रश्न था? जब राजा की यह स्थिति थी तब आमजनों का क्या होता होगा, विचारणीय प्रश्न यह था? इससे भी अधिक विचारणीय यह है कि आगे चलकर बाल गंगाधर तिलक भी पुरोहितो के साथ हो लिए और शाहूजी को ही बदनाम करने में लग गए। यहाँ तक कि ब्रिटिश प्रतिनिधि ने इस पर अपना मत देने से मना कर दिया और मामला न्यायालय पहुँचा। न्यायालय में पुरोहितों की करारी हार हुई। अब देखिए हार पर भी टिप्पणी करते हुए 'केसरी ' में बाल गंगाधर तिलक लिखते हैं कि बेशक शाहूजी महाराज को वेदोक्त का अधिकार है यह उनका पक्का अधिकार हैं किंतु यह अधिकार उनको राजा होने की हैसियत से है अतः उनके भाई और उनके परिवार के सदस्यों को यह अधिकार नहीं है। अर्थात केवल राजा को ही क्षत्रियत्व प्राप्त है वह भी अंग्रेजी न्यायालय से और उनके परिवार को नहीं। इस तरह से इस प्रकरण का पटाक्षेप होता है।

यह प्रकरण उन लोगों के लिए एक सीख है जो ओबीसी (पिछड़े समाज) में पैदा होने के बाद भी अपने को क्षत्रिय कहलाना पसंद करते हैं। जब शासक की यह हाल थी तो जन-सामान्य का क्या हाल होगा यह विचारणीय है। आज की स्थिति भी कहीं इससे भिन्न नहीं है। जब मौका मिलते ही मुख्यमंत्री को टोंटी चोर बता दिया जाता है।

विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए कानून

समाज सुधार, जनकल्याण और मानवता के लिए कानून बनाना और सुंदर सुंदर बातें करना, बिलकुल अलग अलग प्रकरण हैं। विधवाओं के लिए पुनर्विवाह का कानून बनाने का कार्य शाहूजी महाराज को आधुनिक भारतीय शासकों से ऊपर उठाते हुए लार्ड विलियम बैंटिक तथा लार्ड मैकाले की श्रेणी में ला कर खड़ा कर देता है। जिन्होंने देश की तस्वीर और तकदीर बदल दी। किसी भी समाज और देश की उन्नति वहाँ महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों के लिए प्राविधानित वैधानिक व्यवस्था से आकलित की जाती है। उदाहरण के लिए हम अपने पड़ोसी देश नेपाल में झाक कर देखें तो पाएँगे कि वहाँ सब बराबर हैं, कोई विशेष प्रावधान नहीं हैं महिलाओं और समाज के कमजोर और पिछड़े वर्गों के लिए, परिणाम सामने है। गरीब और पिछड़ा देश। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के देशों में यदि हम देखें तो पाते हैं कि बिना किसी एक्सेप्शन के सभी आधुनिक देशों में महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों के संरक्षण के लिए विशेष प्रावधान हैं। चाहे वह अफरमेटिव एक्शन के नाम से हों या अन्य नाम से परंतु प्राविधान अवश्य हैं। यही प्राविधान ही देश को समृद्ध बनाते हैं।। आज से लगभग 200 साल पहले वर्ष 1829 की बात करें तो हमारे देश में सती प्रथा को कानून बना कर प्रतिबंधित किया गया था अंग्रेज अफसरों के द्वारा। इसके 90 वर्ष के बाद वर्ष 1919 में विधवाओं को पुनर्विवाह अर्थात जीवन का अधिकार मिलता है महिलाओं को। यह एक बड़ा पैमाना है हमारे समाज के उन्नत होने और हमारे विकसित होने का। विश्व के किसी भी राष्ट्र में सती प्रथा और देवदासी जैसी प्रथा नहीं है। शाहूजी महाराज ने महिलाओं की इस स्थिति को समझा और विधवाओं के पुनर्विवाह के लिए यह प्राविधान बनाया। कानूनन विधवाओं का विवाह वैध घोषित किया। इसके पहिले विधवाओं का विवाह निषिद्ध था। यदि कोई अपनी विधवा बेटी का विवाह करना भी चाहता था तो कानूनन वह वैध ही नहीं था। साफ शब्दों में कहें तो विधवा औरत पूरी

जिंदगी बाबा और बाबू को शारीरिक सेवा देने के लिए अभिशप्त थी। यही कारण था कि तत्समय का कानून उसे जीवित रहने का अधिकार तभी देता था जब वह विधवा बन कर ही रहे। दूसरी ओर ब्राह्मण पुरोहित इसका पुरजोर विरोध करते थे यह भय दिखाकर कि भयंकर अनिष्ट हो जाएगा। भयंकर विपदाएँ आ जाएँगी। उनके हर कार्य की प्रतिक्रिया के हिसाब से इसका भी तीव्र प्रतिरोध हुआ। सारे दैनिक समाचार पत्रों ने जमकर भड़ास निकाली शाहू महाराज को ब्राह्मणों को चिढ़ाने में ही आनंद आता है। शाहूजी महाराज को धार्मिक मामलों में दखल देने से बचना चाहिए। ठीक है ब्रिटिश सरकार ने यह कानून पास किया है परंतु हिंदू राजाओं को अपने धर्म का भी खयाल करना चाहिए। मतलब धर्म के नाम पर अपराध और लूटमार, यही चरित्र था हमारे देश के आध्यात्मिक नेताओं का। भला हो अंग्रेजों का जिनके चलते महिलाओं और समाज के कमजोर वर्गों को जीने और सम्मान से रहने का अधिकार मिला।

अस्पृश्यों की हाजिरी प्रथा की समाप्ति : गुलामी से आजादी की ओर

देश में मध्य काल में प्रचलित क्रूरतम और अमानवीय कानूनों में शामिल यह कानून एक ऐसी व्यवस्था थी। जिसके तहत समाज के एक वर्ग के बारे में यह मान लिया गया था कि वह वंशानुगत रूप से अपराधी है। उसे वहाँ से निकालने की आवश्यकता नहीं है। उसे जन्मजात अपराधी मान कर पीढ़ी दर पीढ़ी ऐसे अपराधो का सामाजिक दंड झेलने के लिए अभिशप्त कर दिया गया था जो उसने किया ही नहीं था और न ही कहीं से भी उसके लिए वह जिम्मेदार ही था। उसके पुरखों के द्वारा किए गए अपराधों जो कि निश्चित रूप से वर्ण-व्यवस्था की जकड़न के चलते बिना किए ही सिद्ध हो गए रहे होंगे के लिए विहित दंड को सहन करने के लिए वह सदियों से मजबूर था। दूसरे शब्दों में वह ब्राह्मणों का सामाजिक और सांस्कृतिक और प्रशासनिक बंधुआ मजदूर था। इस व्यवस्था के तहत कतिपय जातियों महार, माँग, रामोशी और बेरड़ आदि शामिल थीं, को बिना कोई अपराध किए ही अपराधी मान लिया गया था। निश्चित रूप से इसमें शामिल जातियाँ आज की तारीख में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जाति में शामिल हैं। इन समाजों के सदस्यों को आनुवंशिक अपराधी मान कर इन पर प्रतिबंध लगाए गए थे। इसके तहत इनको स्थानीय शासन (तत्समय राजा रजवाड़ा या स्थानीय पुलिस थाना या पुलिस पाटिल) पर प्रतिदिन अपनी उपस्थिति दर्ज करानी पड़ती थी। अर्थात सही मायने में वह गुलाम थे, दास थे। यह उस क्षेत्र विशेष को छोड़ नहीं सकते थे। यही हाजिरी प्रथा के नाम से जानी जाती थी। आगे चलकर इस कानून ने और जोर पकड़ा और यह एक बेगार व्यवस्था में तब्दील हो गई। अर्थात बिना कोई मजदूरी दिए काम करवाने का अधिकार। कोई विरोध करे तो सर्वाधिकार सुरक्षित, जैसे चाहें वैसे दंडित करने का। ऐसी दशा में इन समाजों के सामने अपराधवृत्ति से बाहर निकलने का रास्ता ही बंद हो गया था। इन क्षेत्रों में कोई भी अपराध होता था तो सीधे-सीधे इन्हें

ही उसका जिम्मेदार मान लिया जाता था। बहुत ही आसान था वर्ण-व्यवस्था की लूट पाट में जैसे आज भी होता है सत्य की परीक्षा जलाकर या पानी में डुबा कर जाँच करना और उससे भी आगे यादव जी गाय पालें तो तबेला और बाबू साहब गाय पालें तो गोशाला। अर्थात जिसको चाहें दंडित कर दें, अपमान करना तो आम बात है। मानवीय असंवेदनशीलता की पराकाष्ठा थी।

शिक्षक का बेटा शिक्षक,
अधिकारी का बेटा अधिकारी, और
चोर का बेटा चोर।

शाहूजी महाराज को जैसे ही इस प्रथा की जानकारी हुई, उन्होंने तत्काल ही इसका अध्ययन कर इसे समाप्त करने का आदेश कर दिया। दिनांक 01 अगस्त 1918 को उन्होंने आदेश निर्गत कर इस प्रथा को समाप्त कर दिया। इस कानून के आ जाने से महार जाति की परंपरागत चौकीदारी और केवल चौकीदारी ही नहीं वरन सदियों की गुलामी समाप्त हुई। उन्होंने इस आदेश में स्पष्टीकरण करते हुए 04 जून 1919 को कहा–

'मैंने हाजिरी समाप्त कर दी है। बिना कोई गुनाह किए ही किसी को बाधित करना, निरुद्ध रखना मेरी ही नही हिज मैजेस्टी को भी स्वीकार्य नहीं है। बहुत छोटे से भूमि के टुकड़े जिससे एक परिवार का पालन पोषण नहीं हो सकता के लालच में इनका जीवन बर्बाद हो रहा है। अब हाजिरी समाप्त होने के बाद वह गाँव छोड़ कर बाहर आ जा सकते हैं अपने अनुसार अपने व्यवसाय का चुनाव कर सकते हैं और सिर उठाकर जीवन जी सकते हैं। वह आजाद हैं, वह कहीं भी जाएँ उन्हें कहीं सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है।' अर्थात गुलामी समाप्त।

इस हाजिरी व्यवस्था को यदि हम गहराई से विचार करें तो यह पाते हैं कि हाजिरी के नाम पर यह तो भयंकर गुलामी थी जिसमे मजदूरी माँगने का भी अधिकार नहीं था। और यह अंग्रेजों ने नहीं किया था। यह हमारे पुरोहितों की जमात ने बना रखा था। देश के बहुसंख्यक आबादी से सामाजिक और सांस्कृतिक गुलामी करवा कर संतुष्टि नहीं मिली तो हाजिरी और देवदासी प्रथा भगवान के नाम पर चला दी। अंग्रेजों ने तो इसे समाप्त किया। और कहा जाता है कि हम अंग्रेजों के गुलाम थे। हम अंग्रेजों के नहीं ब्राह्मण पुरोहितों के गुलाम थे सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक? और आज भी हैं!

शंकराचार्य की धर्म सत्ता को चुनौती

शाहूजी महाराज के द्वारा किया गया यह कार्य आज भी उनके व्यक्तित्व को मानवता, समता और बंधुत्व की अनंत ऊँचाइयों तक ले जाता है। शंकराचार्य की सत्ता को चुनौती देने का साहस भारतीय इतिहास में केवल अंग्रेजों को ही प्राप्त है। देशी राजाओं में यह श्रेय केवल शाहूजी महाराज को है। **सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में बिना किसी अपवाद के सारे के सारे हिंदू शासक, राजे, महाराजे शंकराचार्य की सत्ता को अपने सिर पर लाद कर, कमजोरों पर पाशविक अत्याचार करने के अधिकार को बदस्तूर बनाए रखने के लिए पलकें बिछाए नजर आते हैं। केवल शाहूजी महाराज ही ऐसे अकेले शासक हैं जिन्होंने मानवता की रक्षा के लिए शंकराचार्य की सत्ता को उखाड़ फेंका।** यद्यपि उनको इसका खामियाजा भी भुगतना पड़ा। शंकराचार्य और उनकी ब्राह्मणी सत्ता ने शाहूजी महाराज को शैक्षिक जगत से ही बाहर कर दिया। एक ऐसा शासक जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन शिक्षा समाज कल्याण और मानवता की सेवा में समर्पित कर दिया उसका नाम ही इतिहास और शिक्षा जगत से मिटा कर शंकराचार्य की सता ने पूरा बदला लिया।

कोल्हापुर के शंकराचार्य वासुदेव शास्त्री भिलवाडीकर प्रारम्भ में वेदोक्त विवाद से दूर थे। वह अन्य पुजारियों की भाँति मठ की सम्पत्ति का मनमाना उपयोग कर रहे थे, जैसा कि हर मठ और मंदिर में आज भी चल रहा है। शासन सत्ता का काम काज अपने ढंग से चल ही रहा था कि बाल गंगाधर तिलक के बहकावे में आकार भिलवाडीकर ने वेदोक्त प्रकरण में महाराजा का विरोध कर दिया और अपनी सभाओं में साफ-साफ कहा कि महाराज की वेदोक्त माँग गलत है। सदियों से चली आ रही पौराणिक परम्परा का उन्हें पालन करना चाहिए। वह क्षत्रिय नहीं हैं अतः उन्हें वेदोक्त का अधिकार नहीं है। इस मठ को सारी सम्पत्ति और अधिकार महाराजा ने ही दिये या दिलवाए थे, इनकी इस धृष्टता से शाहूजी महाराज को नहुत धक्का

लगा परंतु वह शांत बने रहे और वर्ष 1863 के आज्ञा पत्र का हवाला देकर वर्ष 1903 में शंकराचार्य के मठ की समस्त सम्पत्ति जब्त कर ली और वहाँ पुलिस का पहरा बैठा दिया। जैसे ही भिलवाडीकर को इसकी भनक लगी उसने आनन फानन में वह अपने एक युवा शिष्य काशीनाथ बुवा गोसावी ब्रम्हनालकर को गद्दी सौंपकर संकेश्वर भाग गया कि कहीं शाहूजी उसे जेल में न डाल दें। चूँकि संकेश्वर, कोल्हापुर से बाहर था अतः वह शाहूजी महाराज की सत्ता से बाहर था। अतः वह बच रहा परंतु वर्ष 1903 के दूसरे आदेश में उन्होंने मठ के दिवानी अधिकार भी छीन लिए और शंकराचार्य की सत्ता ध्वस्त कर दी। सम्पूर्ण मध्यकाल और आधुनिक काल में किसी भी शासक के पास इतना साहस नहीं था कि वह शंकराचार्य के गलत कामों को गलत बताने की हिम्मत कर सके। भारतीय इतिहास के सारे राजे महाराजे शंकराचार्य अथवा ब्राह्मणों के चरणों में लोटते पोटते नजर आते हैं। वह विरोध क्या करेंगे? भारतीय इतिहास के सारे महाराजे उनकी कृपादृष्टि की छाया के लिए हाथ बाँधे खड़े रहते थे और केवल उतना ही करते थे जितना करने का निर्देश उन्हें पुरोहित से मिलता था।

विरोध! चरित्रहनन और जान से मारने की धमकी

आखिर कौन सी ताकतें है जो महापुरुषों का विरोध करती हैं? निश्चित रूप से जिनका नुकसान हुआ या होता रहता है। उनके कार्यों से किसको नुकसान हुआ और किसको फायदा यह स्वतः स्पष्ट है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है। समाज और सत्ता पर अनियंत्रित कब्जे के बावजूद थोड़ा सा अधिकार बहुजनों के पास जाता भी पुरोहितों को बर्दाश्त नहीं हुआ? मजे की बात है कि हम अभी भी उनसे ही पूछ कर अपना सारा निर्णय करते हैं (जीवन के सबसे महत्वपूर्ण अवसरों जन्म मृत्यु और विवाह पर शुभ या अशुभ कार्य ब्राह्मणों से पूछकर ही करना)। खैर शाहूजी महाराज के कोल्हापुर महल में जहाँ उनका घर परिवार रहता था। वहाँ एक पारसी परिवार जो जीरगे नाम से जाना जाता था के राजमहल की महिलाओं से पारिवारिक संबंध थे। उस समय राज परिवारों में महिलाओं का निवास पृथक हुआ करता था वहाँ केवल राज परिवार के सदस्य और अन्य घरों की महिलाओं का ही आना जाना होता था। जीरगे परिवार की महिलाएँ घरेलू आचार मुरब्बा आदि बनाने में बहुत प्रवीण थीं। उनका राजमहल में आम और खास अवसरों पर आना जाना लगा रहता था। इस परिवार की एक सुंदर कन्या महल की सरकारी गाड़ी से आती जाती थी। ऐसे ही एक समय उसके आने जाने का समय देखकर दरबार के पुरोहितों ने अफवाह फैला दी कि जीरगे परिवार की महिलाओं से महाराज के अनैतिक संबंध हैं। इसके कुछ समय के बाद ही इस कन्या के पिता की मृत्यु हो गई। बस अब तो और मजबूत बहाना मिल गया। समाचार पत्रों में छप गया कि बात और बदनामी को छिपाने के लिए शाहूजी महाराज ने उसके पिता की हत्या करवा दी। इसी तरह से वर्ष 1912 में एक गुमनाम पत्र दिल्ली सरकार में वायसराय की पत्नी लेडी मिंटो को मिला जिसमें यह बताया गया था कि कोल्हापुर राज्य में कोई भी महिला विशेष रूप से ब्राह्मण महिला सुरक्षित नहीं है। ब्राह्मण महिलाओं को शाहूजी महाराज से खतरा है। हमें ऐसे अत्याचारी शासक से मुक्ति

दिलाई जाय। इस पत्र का हवाला देकर कोल्हापुर के समाचार-पत्रों–केसरी, लोकशाही, राजकारण और अन्य समाचार पत्रों ने खूब नमक मिर्च लगा कर शाहूजी महाराज के विरुद्ध जहर उगला।कुलकर्णी एसोसिएशन की ओर से संकेश्वर में 16 और 17 मई 1920 में आयोजित परिषद की अध्यक्षता करते हुए दत्तो पंत बेलवी ने कहा "No man's wife and life are safe in Kolhapur State" अर्थात कोल्हापुर राज्य में किसी की भी औरत और जीवन सुरक्षित नहीं हैं। बाल गंगाधर तिलक के केसरी ने सुर्खी लगाई 'कोल्हापुर राज्य में किसी की भी इज्जत और जीवन सुरक्षित नहीं है।' घटना की जाँच के लिए स्वयं शाहूजी महाराज ने बंबई सरकार से अनुरोध किया। जाँच हुई उसमे साफ निकल कर आया कि महाराज तो राज महल में निवास करते ही नहीं थे वह तो सोनतली आश्रम में ही निवास करते थे। अतः खबर असत्य पाई गई और प्रकरण का पटाक्षेप हो गया।

आइए देखते हैं उस समय की मीडिया क्या कहती थी। उस समय ब्राह्मणों के सबसे बड़े नेता बाल गंगाधर तिलक थे। शाहू जी महाराज राजा थे और शासक होने की हैसियत से वह उनके पत्र 'केसरी' की सहायता भी करते थे। परंतु केसरी ने हमेशा उनका विरोध ही किया कभी भी समर्थन नहीं किया। राजकारण ने कहा 'अंग्रेजों को अपना कारोबार किस तरह करना चाहिए इसकी सलाह देना हंसी मजाक की बात है।' केसरी ने कहा–जिन्हें वर्ष 1902 में छत्रपति के आदेशों का जरा भी ज्ञान है उन्हें इसमें कोई चमत्कार नहीं दिखेगा। नए मराठा जगद गुरु बनाना, अखबारों को पैसे देकर अपने शागिर्द के रूप में पालना, सत्यशोधक समाज के अपराधियों को संरक्षण देना यह कोल्हापुर की कूटनीति का द्योतक है। ब्राह्मणों और गैर ब्राह्मण का सारा झगड़ा इसी की देन है।'

तास गाँव के कुलकर्णी परिषद के दिन अर्थात् 17 मई 1921 दैनिक केसरी की सुर्खी थी। 'हमारे स्वराज्य द्रोही छत्रपति, मनमानी कारोबार, जुल्म, जबरदस्ती अमानुष अत्याचार कर के प्रजा को सतानेवाला लोकद्रोही राजा, स्वराज की संकल्पना का विरोध करने वाला, आजादी की लड़ाई में अवरोध पैदा करने वाला, स्वराज की गुप्त खबर अंग्रेजों को देनेवाला, स्वराज आंदोलन को दबानेवाला, अपने स्वार्थ के लिए ब्रिटिशों की जी

हुजूरी करने वाला, राष्ट्र के साथ गद्दारी करने वाला, राष्ट्र के साथ बेईमानी करने वाला स्वराजद्रोही छत्रपति' इस तरही की भड़काऊ और अपमानजनक सुर्खी केसरी लगा रहा था। बंबई के लोकमान्य पत्र ने 20मई 1920 को लिखा 'शाहू राजा की हैसियत एक सामान्य हेर (जासूस) से अधिक नहीं हैं और वह स्वराजद्रोही हैं। लोकसंग्रह ने कहा शाहू जी महाराज का हृदय उनकी चमड़ी की तरह ही काला है।' लोकशाही ने 23 मई 1921 के अंक में कहा 'महाराजा ने आजादी के संघर्ष को नष्ट करने का प्रयास करके महाराष्ट्र को कलंक लगवाया है स्वराज्य आंदोलन का विरोध करने वाले शाहू महाराज को गद्दी त्याग देना चाहिए।' इंडियन सोशल रिफॉर्मर ने अपने, 5 जून 1921 के अंक में लिखा 'शाहू राजद्रोही हैं और उनका पूरा अधः पतन हुआ है।' इस सारी कवायद में बाल गंगाधर तिलक का पत्र केसरी भी अपनी पूरी क्षमता के साथ शामिल था। बाल गंगाधर तिलक कितने लोकमान्य थे इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि शाहूजी महाराज तिलक की सहायता करते थे। तिलक के राष्ट्रीय आंदोलन में वह आर्थिक मदद करते थे। वर्ष 1817 में कोल्हापुर राज्य के विश्वसनीय अधिकारी विट्ठल काका भिड़े को कम से कम चार बार आर्थिक सहायता लेकर महाराज ने भेजा था। यह सहायता भी शाहूजी महाराज गुप्त रूप से अपने भाई बापू राव के माध्यम से स्थानीय मेलों में किया करते थे जिससे ब्रिटिश सरकार को शंका नहीं हो। आलंदी, पंढरपुर के मेले की आड़ ले कर नियमित रूप से सहायता पहुँचाई जाती थी।

5 जनवरी 1918 को लार्ड चेम्स फोर्ड से शाहूजी महाराज की वार्ता चल रही थी जिसमें उन्होंने मराठों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल दिए जाने का अनुरोध किया था। उसी वार्ता के दौरान ही शाहूजी महाराज को कोल्हापुर के मुख्य पुलिस अधिकारी का तार मिला। इस तार में लिखा हुआ था कि ब्राह्मण बस्ती में पर्चे लगाए गए हैं जिसमें धमकी दी गई है कि 'छत्रपति शाहू को 20 फरवरी 1918 से पहले खत्म कर दिया जाएगा। इसकी जानकारी केंद्रीय गृहमंत्रालय को दे दी गई है।' केंद्रीय गृह मंत्रालय ने शाहूजी की सुरक्षा के लिए सादी वर्दी में गुप्तचर पुलिस तैनात कर दी। परंतु शाहूजी महाराज इससे जरा भी विचलित नहीं हुए। वह 11 फरवरी 1918 से पहिले दिल्ली से कोल्हापुर लौट आए, और अपने मिशन में लग गए।

तिलक और शाहूजी के बीच संघर्ष

यह हमारे समाज की विडंबना है कि बाल गंगाधर तिलक जो कि महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के रूप में माने जाते हैं उनका शाहूजी महाराज के द्वारा किए जा रहे सामाजिक और मानवतावादी कार्यों से कोई सरोकार नहीं था। यह तथ्य अपने आप में बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है। और सहसा इस पर विश्वास नहीं होता। परंतु यह इतिहास की कड़वी सच्चाई है। बाल गंगाधर तिलक शाहूजी महाराज के समकालीन थे। वह केसरी नाम से दैनिक पत्र निकालते थे। केसरी के माध्यम से उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम का बीड़ा उठा रखा था। **वह केवल देश हित की बात करते थे। उन्हें देश के कमजोर वर्गों से कोई मतलब नहीं था। यहाँ तक कि शाहू जी महाराज के द्वारा किए जा रहे शिक्षा और समाज कल्याण के कार्यों से कोई वास्ता न होना तो दूर की बात थी वह शाहूजी महाराज के कार्यों का विरोध करते थे। शाहूजी महाराज को खुलेआम राष्ट्रद्रोही, अंग्रेजों का पिट्ठू मानते थे। और सामाजिक रूप से शूद्र कह कर अपमानित करते थे।** वेदोक्त प्रकरण में अन्याय पूर्ण और गलत होते हुए भी उन्होंने पुरोहितों का ही साथ दिया था, और एक बार नहीं कई-कई बार लिखा कि शाहूजी महाराज का कथन गलत है, और पुरोहित सही कहते हैं। शाहूजी महाराज को वेदोक्त अधिकार नहीं है वह शूद्र है। मामला अंग्रेजी न्यायालय में गया। अंग्रेजी न्यायालय ने साफ-साफ निर्णय दिया कि शाहूजी महाराज क्षत्रिय हैं। इस पर केसरी की टिप्पणी थी कि निश्चित रूप से शाहूजी क्षत्रिय हैं और उन्हें वेदोक्त अधिकार भी है परंतु उनके परिवार को यह अधिकार नहीं है। कितनी धूर्तता की बात है कि पहले यही बात गंगाधर तिलक का पत्र उन्हें शूद्र बताते हुए कह रहा था कि उन्हें वेदोक्त का अधिकार नहीं है और न्यायालय से निर्णय होने बाद कह रहा है कि उन्हें यह अधिकार है परंतु उनके परिवार को नहीं। मतलब केसरी जैसे पत्र की हैसियत और सम्मान एक दलाल से अधिक की नहीं थी। जिसका अपना कोई मान सम्मान नहीं था। इस पत्र की हैसियत एक निर्लज्ज

विदूषक से अधिक की नहीं थी जो मार खाने के बाद भी हँसता रहता है।

तिलक और उनके अखबार केसरी को शाहूजी महाराज के स्कूलों और छात्रावासों से कोई मतलब नहीं था यहाँ तक कि उन्होंने शाहूजी महाराज के आरक्षण के आदेश का भी विरोध किया। आरक्षण के आदेश पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा कि इससे राज्य कार्य में बाधा उत्पन्न होगी और अयोग्य लोग शासन में आ जाएँगे। इस समय वह अपने अखबार में ऐसी टिप्पणियाँ करते रहते थे 'लगता है महाराजा को राज्य कार्य से कोई मतलब नहीं रह गया है', 'इन निरक्षर और मजदूर लोगों को पढ़ाकर महाराजा पता नहीं कौन सा महान कार्य करना चाहते हैं', 'जितना मोर नाचेगा उतना ही मोरनी नाचेगी' आदि। केसरी पत्र हमेशा शाहूजी का अपमान ही करता रहा और इस तरह से बाल गंगाधर तिलक जब तक जीवित रहे शाहूजी महाराज का मुखर विरोध ही करते रहे। चूँकि यह वर्ण-व्यवस्था की ही पकी हुई फसल थी कि पढ़ने वाले भी ब्राह्मण, पढ़ाने वाले भी ब्राह्मण केवल यही नहीं समाचार पत्र छापने वाले, उसे पढ़ने वाले,उसका वाचन करने, उसको सुनने वाले, उसको समझने वाले, उसको समझाने वाले, उस पर प्रतिक्रिया देने वाले,उसके अनुसार आंदोलन करने वाले,और उसे ही सत्य मानने वाले सभी ब्राह्मण थे। वर्ण-व्यवस्था की यह पूरी तरह पकी हुई फसल थी। जिसे ब्राह्मण समाज के लोग 100 साल के बाद आज भी पूरे मजे से काट रहे हैं।

मंदिरों की भूमि पर सरकार का अधिकार : छोड़कर भागे पुरोहित

शाहूजी महाराज आधुनिक भारत के महान प्रयोगधर्मी शासक थे। जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन मानवता को समर्पित कर दिया था। मानवता और कमजोरों के प्रति इतनी संवेदना और उनके लिए इतने ठोस प्रयास अन्यत्र दुर्लभ हैं। कम से कम भारतीय इतिहास में सम्राट अशोक को छोड़कर दूसरा शासक नहीं है अंग्रेजों को छोड़ कर। समाज के कल्याण के लिए शिक्षा के प्रसार के महत्व को देखते हुए शाहूजी महाराज ने कई क्रांतिकारी कदम उठाए।' सभी को शिक्षा 'यह सिद्धांत मानने के लिए हमारा सभ्य समाज तैयार ही नहीं था। और भी साफ शब्दों में कहें तो पुरोहित समाज अभी भी शिक्षा पर अपने एकाधिकार को कायम रखना चाहता था। यही नहीं इस एकाधिकार में किसी तरह का व्यवधान उसे सहन नहीं था। इसी कारण पुरोहित और ब्राह्मण समाज उनके कार्यों का पुरजोर विरोध करता था। अपनी इस व्यवस्था में शिक्षकों की कमी पूरी कराने के लिए उन्होंने भूमि देकर शिक्षकों की नियुक्ति की और सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की। परंतु समस्या यह थी कि शिक्षा में जो समाज आगे था, वह इतना धूर्त और संवेदनहीन था कि वह यह मानने को ही तैयार नहीं था कि सबको पढ़ा लिखा होना चाहिए। सभी को शिक्षा यह उन्हें हजम ही नहीं हो रहा था। यही स्थिति कमोबेश आज भी है जब हम देखते हैं की लाक डाउन में शराब की दुकानें तो लगातार खुली रहीं और विद्यालय बंद रहे। बड़ी निर्लज्जता से जानकारी मिली कि सरकार घाटा पूरा कर रही है? शाहू जी महाराज का यह प्रयोग सफल नहीं हो पाया। जिनको शिक्षा की एवज में भूमि दी गई थी उन्होंने सभी के लिए शिक्षा की जगह पर केवल ब्राह्मणों के लिए शिक्षा का सिद्धांत लागू कर दिया। बहुजनो को वहाँ घुसने ही नहीं दिया। वहाँ भी कोई न कोई बहाना बना कर बहुजन आबादी को दूर ही रखा गया। इससे अनुभव प्राप्त

कर उन्होंने इस योजना को वहीं रोक दिया। इस योजना से उन्हें यह सबक मिला कि बहुजनों को पढ़ने के लिए अनिवार्य शिक्षा कानून लाना ही पड़ेगा। जब तक यह कानून नहीं बनेगा तब तक यह धूर्त पुरोहित समाज किसी और समाज को विद्यालय में आने ही नहीं देगा। ऐसी स्थिति में उन्होंने इस योजना को बंद कर अनिवार्य और निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की योजना प्रारंभ की और 500 से एक हजार तक की जनसंख्या वाले सभी ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना की। इस कार्य के लिए उन्होंने रुपये 1.00 लाख रुपए की व्यवस्था की।

विद्यालयों की स्थापना के लिए धन की कमी आड़े आ रही थी। इस कमी को पूरा करने के लिए शाहूजी महाराज ने ऐसा निर्णय ले लिया जो देश के सबसे क्रांतिकारी निर्णयों में से एक माना जाता है। **शाहूजी महाराज ने एक ही झटके में राज्य के समस्त मंदिरों का अधिग्रहण कर समस्त मंदिर परिसरों में प्राथमिक विद्यालय खोलने का आदेश कर दिया। इससे विद्यालयों के लिए भवन की कमी की समस्या दूर हो गई।** अपने दूसरे आदेश से उन्होंने मंदिरों की आय का उपयोग अध्यापकों को वेतन देने के लिए करना प्रारंभ कर दिया। महाराजा के इन दोनों आदेशों से मंदिरों के पुरोहित बौखला उठे परंतु इतने शक्तिशाली शासक के सामने विरोध करने की उनकी हिम्मत नहीं हुई।

सर नेम का उपहार

यह कहते हुए बहुत कष्ट होता है कि मात्र जाति के नाम पर घृणा, अमानवीयता और अपमान जनक व्यवहार उस समय ही नहीं वरन आज भी हमारी हिन्दू संस्कृति की पहिचान है। यही वर्ण-व्यवस्था है। इसी कारण यूरोपीय देश हमें जनजाति से अधिक नहीं मानते हैं। अमानवीयता की यह पराकाष्ठा पूरे विश्व में और कहीं नहीं मिलेगी। जब आज यह स्थिति है तो 120 साल पहले क्या स्थिति रही होगी। इसका अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे में शाहू जी महाराज ने एक नई तरकीव निकाली उन्होंने ऐसे अस्पृश्य और पिछड़े वर्ग के लोग जो हुनर मंद थे और किसी न किसी काम में आगे बढ़े हुए थे उनको यह अनुमति दी कि वह ब्राह्मणो और क्षत्रियों के सरनेम का प्रयोग करें। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसके पहले इसकी अनुमति नहीं थी। हमारी देसी भारतीय दंड संहिता (आई.पी.सी.) और अपराध प्रक्रिया संहिता (सी.आर.पी.सी.) इसी जाति व्यवस्था पर ही आधारित थी। अब यदि उसमे पहिचान न हो पावे तो यह व्यवस्था ही भर भराकर ध्वस्त हो जावेगी। अनुमति का प्रश्न ही नहीं उठता था। ऐसे में शाहू जी महाराज ने बिना कोई आदेश किये ही यह काम करवा डाला, और वर्ण-व्यवस्था की बेड़ियाँ तोड़ कर बहुजनों को आजाद कर दिया। पिछड़े और अस्पृश्य समाज में से कला के विभिन्न आयामों में जो भी लोग आगे आ रहे थे उनको शाहू जी महाराज ने अपनी इच्छा और सुविधानुसार उपनाम लगाने की छूट दे रखी थी इसमे से प्रमुख उपनाम थे सूर्यवन्शी, गायकवाड़, जाधव, वानखेड़े, शिंदे, मोरे, कदम, पवार, सावन्त, लोखंडे, शिर्के, चह्वाण, माने आदि। यही कारण है कि पंडित, गुरु, आचार्य, साठे, खान्डेकर, भालेराओ, शास्त्री जैसे उपनाम आज भी अस्पृश्यो में पाए जाते हैं इस कवायद के पीछे शाहू जी महाराज का ही दिमाग था।यह जीवन जीने के लिए यह एक रास्ता अपनाया गया था। जिससे समाज में जिंदा रह सकें। इस काल में देश में औद्योगीकरण हो रहा था। शहरीकरण के कारण अब जीवन यापन के लिए

गाँव के अतिरिक्त शहरों में सम्भावनाए सामने आ रही थीं। मात्र अंग्रेजों ने वर्ण-व्यवस्था तोड़ने का काम किया उनके पहले के शासकों ने वर्ण-व्यवस्था को नहीं छेड़ा तो उन्होंने भी विदेशी आक्रांताओं को नहीं छेड़ा। जाति छिपाना उस समय की मजबूरी थी जिसने सम्मानजनक जीवन जीने का एक रास्ता दिखाया। यह कोई झूठ या मक्कारी नहीं थी वरन वर्ण व्यवस्था से उपजा एक रास्ता था जो जाति व्यवस्था की मानसिक बेड़ियों में जकड़े लोगों के लिए एक मार्ग के सामान था और इस मार्ग के प्रणेता थे शाहू जी महाराज।

बहुत से पाठक अर्थात पढ़ने वाले यह कहेंगे कि एक बुराई को समाप्त करने के लिए दूसरी बुराई और झूठ का सहारा लेना कहाँ तक उचित है। यहाँ हमें इस पर विचार करना है कि झूठ और सच तो तब आता है जब हमारा पेट भरा हो। अपनी आँखों के सामने भूख से बिलखते बच्चों को देखकर सारे सिद्धांत इश्वरीय सत्ता में विलीन हो जाते हैं। अपने जीवित् रहने के लिए शाहू जी महाराज का यह उपकार उनका समाज कभी नहीं भूलेगा।

कमजोर वर्गों को आहवान — अपने धार्मिक संस्कार स्वयं करें

दिनांक 19 अप्रैल 1919 को कानपुर में आयोजित कुर्मी समाज सम्मेलन के समारोह में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने अपने समाज से पुरोहित पैदा करने का आवाहन करते हुए अपने धार्मिक कर्मकांड स्वयं संपादित करने पर बल दिया। समारोह के अपने अध्यक्षीय संबोधन में उन्होंने बताया कि उनके राज्य में सत्यशोधक विद्यालयों की स्थापना की गई है। इन विद्यालयों में ब्राह्मण पुरोहितों के द्वारा कराए जाने वाले सभी तरह के कर्मकांडों को कराने की संपूर्ण प्रविधि का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक संपन्न होने वाले समस्त संस्कार शामिल रहते हैं।

शाहूजी महाराज का यह स्पष्ट मानना था कि जब तक पिछड़े समाजों में पुरोहित नहीं पैदा होंगे। धर्म की जकड़न कमजोर नहीं पड़ेगी। वर्ष 1913 में पहला सत्यशोधक स्कूल कोल्हापुर में खोला गया। धनगर समाज के प्रज्ञावान आचार्य श्री विट्ठल वीरजी ढोंडे इसके प्रथम प्रधानाचार्य थे। थोड़े ही समय, मात्र तीन महीने के बाद से ही यहाँ से प्रशिक्षित युवक निकलने लगे। इस स्कूल के प्रभाव का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वर्ष 1913 में जब इसकी स्थापना हुई थी इसी वर्ष में ब्राह्मण पुरोहितों के बिना 5161 धार्मिक संस्कार करवाए गए। और इसका उल्लंघन होने पर रुपये 25.00 का अर्थदंड भी लगा दिया। परिवर्तन की यह लहर बहुत तेजी से काम कर रही थी। शाहूजी महाराज की प्रेरणा से आगामी पाँच वर्ष में 46088 धार्मिक विधियाँ संपन्न कराई गई। पूरे महाराष्ट्र और बड़ौदा तथा अन्य संस्थानों से बड़ी संख्या में मराठा युवक इन विद्यालयों में प्रवेश लिए। यह आँकड़ा सत्यशोधक पाँचवा अधिवेशन अहवाल 1915 पृष्ठ 34-38 से लिया गया है। निश्चित रूप से इसे कम कर कर ही दिखाया या आगे बढ़ाया गया होगा कारण कलम दूसरों के हाथों में ही थी। यह आँकड़ा चौंका देने वाला है। आज के 100 साल पहले हमारे पुरखे इतने जागरूक थे?

इस अभियान में आगे चलकर पुरोहितों के प्रशिक्षण से संबंधित पुस्तकें भी प्रकाशित कराई गई थी। इनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकें निम्न प्रकार थीं।

पुस्तक का नाम	लेखक
भाऊ राव पाटोले	जलसा शिक्षक
भीमराव महामुनि	विद्या प्रकाश
पांडुरंग लेंभे	जलसा प्रकाश
मोतीराम वानखेड़े	सत्यपथ प्रदीप
तुकाराम भोंसले एवं	जलसा कविता संग्रह और
हरी भाऊ चह्वाण	घर का पुरोहित

सत्यशोधक आंदोलन में बड़ौदा के महाराजा ने बहुत सहयोग किया बड़ौदा कोल्हापुर के बाद पहला राज्य था जिसने सत्यशोधक विद्यालयों से निकले पुरोहितों को मान्यता दी। इसके बाद तो झड़ी ही लग गई। शाहूजी महाराज के इस काम से समाज को नई दिशा मिली उसे अपने और पराए का कुछ कुछ एहसास हुआ। उसे यह एहसास हुआ कि सामाजिक रूप से अशिक्षित व्यक्ति की दशा गोवंशीय पशुओं से भी बुरी होती है। जंगल में गोवंशीय पशु भली प्रकार जानता है कि उसका दुश्मन कौन है और उसका दोस्त कौन है। उसे सामाजिक शिक्षा अपने समाज से मिलती है जिसमें उसका जन्म हुआ रहता है।

पृथक निर्वाचक मंडल के लिए संघर्ष

राजनीति शास्त्र में प्रतिनिधित्व की एक व्यवस्था है कि जब समाज का कोई अंग जनसंख्या से इतना कमजोर होता है कि साधारण निर्वाचन से उसके प्रतिनिधियों का चुनकर आ पाना संभव नहीं होता है या आबादी का ऐसा हिस्सा जहाँ साक्षरता नगण्य हो जैसे अपने देश में मुसलमान, अछूत और पिछड़ी जातियां, तो उसके लिए पृथक से चुनाव क्षेत्र बनाकर उनके प्रतिनिधि भेजे जाते हैं। यही है पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था। अपने देश में यह तथ्य सर्वप्रथम तत्कालीन मुस्लिम प्रतिनिधियों ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखा था कि ऐसी दशा में मुसलमान प्रतिनिधि या विधायक सामान्य निर्वाचन से कभी भी लोक सभा में नहीं पहुँच पाएँगे। 80% का प्रचंड बहुमत उसे दबा देगा। इस तरह समाज के इस हिस्से की आवाज विधान मंडल तक पहुँच ही नहीं पाएगी। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो ने तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री लॉर्ड मोर्ले की सलाह पर वर्ष 1909 में मोर्ले मिंटो सुधार पारित किया जिसमें मुसलमानों की इस माँग को मानते हुए उन्हें पृथक निर्वाचन मंडल का अधिकार दिया गया। इस व्यवस्था के तहत मुसलमानों के ऐसे निर्वाचक मंडल या आज की भाषा में कहें तो विधान सभा क्षेत्र या लोक सभा क्षेत्र स्थापित किए गए, जहाँ उनकी संख्या मिलाकर एक निर्वाचन क्षेत्र, जनसंख्या के हिसाब से तैयार हो जाता था। इसे ही पृथक निर्वाचन मंडल का नाम दिया गया था। इसमें मुसलमान उम्मीदवार ही खड़े हो सकते थे और मुसलमान जनता ही मुसलमान प्रतिनिधि का चुनाव करती। ऐसी दशा में अन्य समाज के लोग समाज के लोग उन्हें बरगला नही पाते थे और उनके समाज का सही प्रतिनिधि चुन कर आता था। वह विधान सभा में अपने समाज की समस्याओं को रखता था जो इस व्यवस्था उद्देश्य था कि सभी समाजों की आवाज विधान सभा तक पहुँचे। इन सुधारों से मुसलमानों में काफी जागृति आई और उन्हें काफी सहूलियतें मिली शाहूजी महाराज इस बात से अच्छी तरह वाकिफ थे और उनका मानना था कि अछूतों और

मराठों को भी पृथक निर्वाचन मंडल का अधिकार मिलना चाहिए। अछूत, समाज के ऐसे खंड हैं जिन्हें आज भी मनुष्य नहीं माना जाता। इस तरह की माँग शाहूजी महाराज के द्वारा ब्रिटिश सरकार के समक्ष कई बार की जा चुकी थी। इसी सिलसिले में 12 नवंबर 1917 को उन्होंने सर मोंटेग्यू से मुलाकात की और उन्होंने साफ-साफ कहा कि भारत में एक समूह ऐसा है जिसे मनुष्य की श्रेणी में रखा ही नहीं जाता है। उन्हें छूना निषिद्ध है और पुरोहित समाज के लिए उनकी परछाई पड़ना भी अपराध है। यह समाज इस तरह का है कि उसे सार्वजनिक स्थानों पर पानी तक पीने का अधिकार नहीं है। यहाँ तक कि इनकी स्थिति जानवरों से भी खराब है। अतः अछूतों को मुसलमानों की भाँति पृथक निर्वाचन का अधिकार मिलना चाहिए। उन्होंने मराठों के लिए भी पृथक निर्वाचन मंडल की माँग की।

27 दिसंबर 1917 की खामगाँव की परिषद में शाहू जी महाराज ने बोलते हुए कहा कि वर्तमान में देश का मूल आधार उसकी जाति व्यवस्था है उसको नजर अंदाज करते हुए यदि स्वराज मिलता है तो मुट्ठी भर लोगों के हाथ में सत्ता का अंतरण हो जाएगा जो मानवता के लिए विनाशकारी होगा।

महाराजा शाहू ने लार्ड विलिंगडन को पत्र लिखा कि मेरे साक्षात्कार में मुझे दोबारा इस बात पर जोर देना है कि हमारे देश की स्थिति अन्य देशों से बिलकुल अलग है। इसकी ब्रिटेन क्या किसी भी देश से तुलना नहीं हो सकती है। हमारा देश अंतर्विवाही जन समूहों में बंटा है जिसे जाति कहते है। एक जाति दूसरी जाति से खानपान और वैवाहिक संबंधों में बिलकुल अलग है। इन जातियों के अपने अलग अलग हित हैं।यह एक दूसरे से पृथक तो हैं ही इनमें आपस में खान पान को लेकर भी प्रतिबंध हैं, और यहाँ के सनातन नियम कानूनों के अनुसार इन्हे पढ़ने लिखने पर मनाही है। इनमें शिक्षा का स्तर 2% से अधिक नहीं है। यह सदियों से सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और प्रशासनिक रूप से देश के अल्पसंख्यक ब्राह्मणों के नियंत्रण में रही है जिन्होंने इन जातियों पर बहुत की कड़े अमानवीय और अमानुषिक प्रतिबंध लगा रखे हैं।

वर्ष 1922 में महाराजा की असामयिक मृत्यु ने इस आंदोलन की बहुत कमजोर कर दिया। महाराजा के द्वारा छोड़े गए अवशेष कार्यों को बाबा साहब ने आगे बढ़ाया। अपने पत्रों के माध्यम से और आगे चलकर गोल मेज सम्मेलनों के माध्यम से बाबा साहब ने इस लड़ाई में विजय पाई। दूसरे

गोल मेज कांफ्रेंस में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमसे मैक डोनाल्ड सहमत हुए और, अछूतों को पृथक निर्वाचक मंडल की माँग को स्वीकार किया। यह तो सबको विदित ही है कि इसी प्रकरण पर गाँधी जी की बात जब नहीं सुनी गई तो वह द्वितीय गोल मेज कांफ्रेंस को बीच में ही छोड़ कर भारत वापस चले आए थे। भारत आने के बाद क्या हुआ यह हम सबको पता है। अछूतों को पृथक निर्वाचन मंडल के विरोध में उन्होंने यरवदा जेल में ही आमरण अनशन शुरू कर दिया। यहाँ यह बात गौर करने लायक है कि महात्मा गाँधी ने अछूतों के पृथक निर्वाचक मंडल का इतना विरोध क्यों किया। स्पष्ट रूप से महात्मा गाँधी नहीं चाहते थे कि अछूतों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़े। महात्मा गाँधी की यही इच्छा थी की अछूत जैसे ब्राह्मण भक्त हैं वैसे ही भक्त बने रहें और अस्पृश्यता की अमानुषिक चक्की में पिसते रहें। उन्हें भय था कि यदि यह वर्ग जागरूक हो गया तो सवर्ण अर्थात हिंदू अल्पसंख्यक हो जाएगा। बाबा साहब ने अपने 10 साल की मेहनत से जो उपलब्धि अर्जित की थी। महात्मा गाँधी ने उसे जिद करके बरबाद कर दिया। गाँधीजी के आमरण अनशन पर बैठ जाने से चारों तरफ से यह दबाव पड़ने लगा कि जैसे भी हो गाँधीजी का अनशन समाप्त कराया जाय। यह एक अनैतिक दबाव था जो यह कहता था कि बाबा साहब फाँसी पर झूल जाए। अपने समाज की और मानवता की हत्या कर दें। बाबा साहब इस समय अकेले पड़ गए। कल्पना कीजिए कि इस समय तक शाहूजी महाराज यदि जीवित होते तो कहानी कुछ और होती। बाबा साहब इतने अकेले न पड़ते। अंत में हुआ भी यही कि जान बूझकर बाबा साहब को अपने समाज और मानवता का गला अपने ही हाथों से मजबूरन घोंटना पड़ा और पृथक निर्वाचक मंडल के स्थान पर 149 सीटों के संतोष करना पड़ा। एक बार फिर मानवता हार गई और वर्ण-व्यवस्था, परंपरा से चली आ रही अपनी निकृष्टतापूर्ण निष्ठुरता, निर्लज्जतापूर्ण अड़ियलपन से मानवता की हत्या कर, जीत गई। यदि शाहूजी महाराज 15 वर्ष और जीवित रहते तो आज देश की दशा ही अलग होती। उनके रहते इस तरह का अड़ियलपन भी कांग्रेस के काम न आता। उनके संघर्ष में पूरा बहुजन समाज इसलिए नहीं आ पाया क्यों कि उस समय शाहू जी महाराज या उनके जैसा युगपुरुष नहीं था।

समाज सुधार : अस्पृश्यता पर कानून बनाकर प्रतिबंध और विशेष प्रयास

अछूतों की दशा : यह मात्र दशा ही नहीं है आईना है हमारी सभ्यता का, कितने मानवीय हैं हम,कितना दयावान है हिंदू धर्म, और कितनी संवेदना है हमारे लोगों में। जान बूझकर, कानून बनाकर, इतनी बेदर्दी से सामूहिक कत्लेआम हुआ है मानवता का वह भी ईश्वर के नाम पर। जिनके छू जाने से आदमी अपवित्र हो जाय उसकी परछाई पड़ जाय तो वह सरेआम पीट दिया जाय। कानून में साफ-साफ लिख दिया गया था। क्या स्थिति होगी उसकी। माननीय तसलीमा नसरीन को बांग्लादेश से पहले यहाँ के हमारे धर्म ग्रंथों का अध्ययन कर लेना चाहिए था। उन्हें पता नहीं कितने अब्दुल यहीं मिल जाते हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ और शासक समाज में! इतनी दयनीय स्थिति थी कि जिन कामों में इन्हें महारत हासिल थी उनके लिए भी इन्हें जगह कदापि नहीं मिलती थी–''समाज में को भी कुछ अच्छा था या हो सकता था वह सब इनके लिए निषिद्ध था। यहाँ तक कि हमारे विद्वान भी पूरी तरह से लूट मार पर आधारित व्यवस्था के ही पोषक थे।

समाज में इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिए बहुत सारे छोटे स्तर के पदों पर महार समाज के लोगों की नियुक्ति की। इसी क्रम में इस समाज की स्थिति को उन्नत बनाने के लिए पुलिस विभाग में इनकी भर्ती के लिए शासनादेश किया। 31 जुलाई 1918 को यह आदेश किया कि करवीर राज्य के 16 महारों को पुलिस विभाग में नियुक्त किया जाय और यदि किसी सेवक को आठ माह तक किसी दूसरे गाँव में रुकना पड़े और दूरी 12 मील से ज्यादा हो तो उसे ढाई रूपए प्रति माह अतिरिक्त भत्ता दिया जाय।

इसी अभियान के तहत उन्होंने महारों की क्लर्क पद पर भर्ती करना प्रारम्भ किया। इसी समय यह प्रसिद्ध कहानी आती है कि पहली बार जब उन्होंने शिक्षित महार युवक को क्लर्क पद पर भर्ती किया तो उसके काम में

त्रुटियाँ निकाल कर ब्राह्मण अधिकारियों के द्वारा उसका वेतन रोक दिया गया और बताया गया कि इनका काम सही नहीं है,और यह लिपिक पद के लायक ही नहीं है। यह बात महाराज तक पहुँची। शाहूजी महाराज ने न्यायाधीश को यह कह कर लताड़ा कि आपकी इतनी लम्बी सेवा हो गई है आप नए स्टाफ से ऐसे ही काम लेते हो? आप यही चाहते हो न कि आप की जाति का कर्मचारी रखा जाय? आपने इसके प्रशिक्षण की क्या व्यवस्था करायी है खावड़ें? ब्राह्मण अधिकारी से कुछ कहते नहीं बना। इस घटना के बाद नए कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई।

मात्र इतने से ही शाहूजी महाराज रुके नहीं उन्होंने इस संवर्ग से मध्य वर्ग पैदा करने की नीव डाली। अस्पृश्य समाज से उन्होंने डाक्टर, अभियंता, वकील और अधिकारी पैदा किए। इस समाज के जिन होनहार विद्यार्थियों को वकालत की शिक्षा देकर वकील बनाया उनके नाम निम्नवत हैं–

1. गणाचार्य (मातंग),
2. रामू करंडे (चमार),
3. मंडपालकर (महार)और
4. डी सी पोवार (चमार)

अस्पृश्यों में से चिकित्सक पैदा करने के लिए मिरज मिशन हॉस्पिटल में डॉ. व्हेल और डॉ. वानलेस जैसे विख्यात डॉक्टरों की देखरेख में कई विद्यार्थियों को चिकित्सा का कोर्स करने भेजा। इनका विवरण निम्नवत है

1. खावडे 2. चोपड़े 3. करवेकर 4. रमाकांत

शिक्षा पूरी होने के बाद डॉ. रमाकांत ने शिरोल गाँव में अपना दवाखाना भी खोला। अपने इसी मिशन में आगे बढ़ते हुए चमार जाति के अधिवक्ता डी.सी. पोवार को कोल्हापुर नगर पालिका के अध्यक्ष पद पर पहुँचाया। अस्पृश्यों को सामाजिक बहिष्कार से मुक्ति मिले इसलिए उन्होंने केशव पटेल (मराठा) से मिश्र भोजन गृह खुलवाया और आगे चलकर गंगा राम कांवले (अछूत) से सत्यशोधक होटल खुलवाया। गणपत पवार और लक्ष्मण मास्टर नामके दो अछूत युवाओं को सिलाई की दुकान खुलवाई और स्वयं अपने और राजमहल के वस्त्रों की सिलाई वहीं से कराने के आदेश किए।

आरक्षण : शाहूजी महाराज का संघर्ष

सदियों से कानून बनाकर पठन-पाठन से अलग कर देने के कारण हमारा अपना इतिहास वर्ण-व्यवस्था में शीर्ष पर कुंडली मार कर बैठे समाजों के लगातार झूठ, फरेब और कुटिल मक्कारी का शिकार हो गया। हमें ऐसा लगने लगा कि किसी दैवीय शक्ति के चलते हमें आरक्षण और सत्ता में भागीदारी मिली है।

ऐसा नहीं है सत्ता और देश की संपत्ति में भागीदारी जिसे हम आरक्षण के नाम से भी जान और समझ सकते हैं वह हमारे पुरखों के दशकों लंबे संघर्ष के चलते प्राप्त हुई है और उसके पीछे एक विदेशी और न्यायप्रिय सत्ता का हाथ रहा है। जिसने मानवता के आधार पर हमारे देश में वर्ण-व्यवस्था जैसी घृणित और अमानवीय व्यवस्था को समाप्त करने में समाज के कमजोर वर्गों को सुना, समझा और सहारा दिया। उदाहरण के लिए आज के किसान आंदोलन में 600 किसानों की मौत के बाद उसका वापस लेना और इसमें हुई मौतों को लावारिस मान कर छोड़ देना, उसकी कोई बात ही नहीं करना, 69000 भर्ती में धांधली के विरोध में 6 माह से धरने का कोई असर न होना यह सिद्ध करता है कि वर्ण-व्यवस्था के शीर्ष पर बैठे लोग कितने धूर्त कुटिल और बर्बर हैं। यह हमेशा से ही ऐसे ही रहे हैं। यह तो विदेशी सत्ता का दबाव था कि सत्ता में कुछ भागीदारी मिल सकी। मानवता के इस संघर्ष में शाहूजी महाराज के द्वारा जो सिद्धांत प्रतिपादित किए गए वह आज भी मील के पत्थर की तरह प्रासंगिक हैं। शाहू जी महाराज के द्वारा इस दिशा में कार्य करते हुए तीन बड़े सम्मेलन आयोजित कराए गए। इनका विवरण निम्नवत है–

1. खामगाँव परिषद : आरक्षण के इतिहास में यह पहली सभा आयोजित की गई थी या यों कहें समाज के पिछड़ों और दलितों के हितार्थ देश का यह पहला आयोजन था। इस परिषद में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने मराठों के लिए स्वतंत्र मतदार संघ अर्थात पृथक निर्वाचन मंडल की जोरदार वकालत की। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि 'मराठों की स्थिति मुसलमानों से

भी कमजोर है। मुसलमानों की संख्या कम है परंतु वह बहुत लंबे अरसे तक सत्ता में रहे हैं। इसके विपरीत मराठों की संख्या कुल आबादी का 60% से अधिक है। परंतु वर्ण-व्यवस्था की कुटिल, धूर्तता पूर्ण और अमानवीयता की सीमाएँ पार कर जाने वाले प्रतिबंधों के चलते इनकी स्थिति दो पैरो पर चलने और बोलने वाले जानवर से ऊपर की नहीं बची है।

2. माणगाँव परिषद : 20 मार्च 1920 को करवीर स्टेट में कागल जागीर के माणगाँव में अस्पृश्यों की यह दूसरी परिषद आयोजित की गई। इस कार्यक्रम में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने कहा–'मेरे प्रिय मित्र डॉ. अंबेडकर के विचारों का लाभ लेने मैं यहाँ आया हूँ। डॉ. अंबेडकर मूक नायक नाम का पत्र निकलते हैं और सारे पिछड़े हुए समाज की बेहतरी के लिए काम करते हैं इसी लिए मैं उनका पूरे मनोयोग से अभिनंदन करता हूँ, स्वागत करता, हूँ वंदन करता हूँ।

3. नागपुर परिषद : 30 मई 1920 को नागपुर में अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद का आयोजन किया गया था बहुत ही उत्साह और शान से उनका स्वागत हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा–

''अश्पृश्यता मानव समाज के लिए कलंक है। किसी को भी बिना कोई अपराध किए ही समाज से बहिष्कृत कर देना अपराधी और बेईमान समाज का द्योतक है। आप लोग उनसे अधिक बुद्धिमान, अधिक ताकतवर, अधिक त्यागी और देश सेवी है जो आपसे अस्पृश्यता का व्यवहार करते हैं। आप देश के एक महत्वपूर्ण घटक हैं। मैं आप को बुद्धि पराक्रम में किसी प्रकार ब्राह्मण समाज से कम नहीं समझता। हम सब आपस में भाई भाई हैं। हमारे हक अधिकार कर्तव्य बराबरी के हैं। इसी को आधार मान कर हमें काम करना है।

इस परिषद की सबसे महत्वपूर्ण परिणति बाबा साहब के व्यक्तित्व का उभार के रूप में सामने आई। यहीं से वह देश के नेता और सबसे बड़े विद्वान के रूप में उभर कर आते हैं।

4. दिल्ली परिषद : 15 फरवरी 1922 को ब्रिटिश युवराज दिल्ली आने वाले थे। ब्रिटिश युवराज के भारत भ्रमण के कार्यक्रम के अनुसार अस्पृश्यों के नेता गणेश अक्का जी गवई और उनके साथियों ने 15 और 16

फरवरी 1922 को दिल्ली में अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद का आयोजन किया।

महाराज की सलाह पर गणेश अक्काजी गवई और उनके सारे साथी सड़क के किनारे अपनी पूरी व्यवस्था के साथ एकत्र हो गए। ब्रिटिश युवराज अपने निर्धारित समय से दिल्ली गेट के लिए निकले तो रास्ते में 60,000 से अधिक की संख्या में अपार जन समूह देख कर उन्होंने अपनी कार रोक दी। उनका काफिला वहीं रुक गया। उन्होंने पृच्छा की कि इतनी बड़ी संख्या में लोग यहाँ क्यों एकत्र हैं? गणेश अक्का जी अपने साथियों के साथ आए और वहाँ एकत्र होने का कारण बताया युवराज का सम्मान किया और अपनी स्थिति से अवगत कराया। इन लोगों की ओर से युवराज को मान पत्र दिया गया। मान पत्र में साफ-साफ लिखा हुआ था कि–'हम आपकी वह प्रजा हैं जो कुत्ते बिल्ली से भी खराब स्थिति में गुजर बसर कर रहे हैं। हमें अपने देश भाइयों ने इतना कुचल रखा है कि यदि कहीं गलती से छू भर जाय तो यह हमारे लिए सरेआम पिटने के लिए पर्याप्त है। हमारे प्राणों की कीमत ब्राह्मणों के लिए कुत्ते बिल्ली से अधिक नहीं है। इज्जत आबरू और पढ़ने लिखने की बात तो बहुत दूर है हमारा जन्म ही ब्राह्मणों की गुलामी करने और मार खाने के लिए ही हुआ है ऐसा धर्म ग्रंथों में लिखा हुआ है और यही यहाँ का कानून है। दुभाषिए के माध्यम से उन्होंने सारी बात सुनी तो वह स्तब्ध रह गए। मानवता का इतना बड़ा विनाश वह भी कानून बनाकर उन्होंने कहीं नहीं देखा या सुना था। उन्होंने आश्वासन दिया किया वह अवश्य ही उनकी बात महारानी तक पहुँचाएँगे।

इस तरह दिल्ली परिषद संपन्न हुई। इसी परिषद के पहले युवराज से भेंट का ही प्रभाव था कि अछूतों की समस्या अंग्रेज सरकार के सामने आई फिर भी जैसा कि हम देखते हैं कि साईमन कमीशन के सामने गाँधी एंड पार्टी ने किस तरह धोखा कर यह साबित कर दिया कि भारत में कोई भेदभाव या अस्पृश्यता है ही नहीं?

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के राजनैतिक गुरु और मार्गदर्शक

शिक्षावृत्ति और प्रतिभाओं की खोज के कार्यक्रम में बहुत विलंब से वर्ष 1920 के आस पास शाहूजी महाराज को जानकारी प्राप्त हुई कि कोई महार छात्र विदेश से पीएच डी करके आया है। बस वह चल दिए उस छात्र की खोज में और पहुँच गए मुंबई की चाल में अंबेडकर जी के द्वार पर। बाबा साहब ने सुना तो भागते हुए आए और गिर पड़े महाराज के चरणों में बोले आपने क्यों कष्ट किया महाराज आदेश भेजते मैं आता आपके पास। आपके पास मैं नहीं आ सका, मेरे अपराध को क्षमा करें महाराज। बहुत स्वागत है आपका। आपके आने से मेरी खोली पवित्र हो गई। उनकी आँखों से आँसू झरने लगे। आज तक मुझे बड़े लोगो ने केवल नफरत ही दी और आप इतने बड़े महाराजा मुझे ढूँढते हुए मेरे घर तक आ गए। क्षमा करें महाराज मैं आपके महल में नहीं आ सका। मुझे इसका दुख और शर्मिंदगी है। मेरे पास इतनी क्षमता नहीं है कि मैं आपका स्वागत कर सकूँ। महाराज ने उन्हें गले से लगाया और बोले मुझे गर्व है अम्बेडकर तुम्हारी विद्वता और क्षमता पर। यह दो महापुरुषों का मिलन था। यहीं से शुरूआत होती है भारतीय इतिहास के उस स्वर्णिम युग की जिसने भारतीय इतिहास की दिशा बदल कर एक नए युग की शुरूआत की। भारतीय इतिहास को वर्ण-व्यवस्था और मनुस्मृति से बाहर निकाल कर आधुनिकता में प्रवेश कराया और स्वतंत्रता, समता और मानवता का वह द्वार खुला जिसकी शुरूआत अंग्रेजों ने की थी।

20 मार्च 1920 को करवीर स्टेट के कागल जागीर के माणगाँव में अस्पृश्यों की पहली परिषद आयोजित की गई थी। इसी परिषद से ही बाबा साहब डॉ. भीम राव अम्बेडकर का व्यक्तित्व उभर कर सामने आया। वह इस कार्यक्रम की खास पहिचान थे इन्हे विशेष रूप से परिषद का अध्यक्ष बनाया गया था। इस कार्यक्रम में बोलते हुए शाहूजी महाराज ने कहा–

''मैं मेरे प्रिय मित्र डॉ. अंबेडकर के विचारों का लाभ लेने मैं यहाँ आया हूँ। डॉ. अंबेडकर अभी आपनी पढ़ाई कर रहे हैं और पढ़ाई करते हुए, मूक नायक नाम का पत्र निकलते हैं और सारे पिछड़े हुए समाज की बेहतरी के लिए काम करते हैं इसी लिए मैं उनका पूरे मनोयोग से उनका अभिनंदन करता हूँ, स्वागत करता हूँ वंदन करता हूँ। यह आगे आपका मार्गदर्शन करेंगे।

मैं डॉ. अंबेडकर की विद्वता और समाज तथा देश के प्रति समर्पण की खुले दिल से प्रशंसा करता हूँ हम उन्हें पंडित की उपाधि देते हैं और अपना नेता घोषित करते हैं। उन्हें बहुत से प्रलोभन दिए गए कि वह आपका साथ छोड़कर पुरोहितों से मिल जाएँ और पूरे ऐशो आराम के साथ जीवन जिएं। परंतु मैं आभार मानता हूँ कि इतनी कमजोर स्थिति होने के बाद भी डॉ. अंबेडकर हमारे साथ हैं। मैं अनुरोध करता हूँ कि डॉ. अंबेडकर मेरे राजपूतवाड़ी सोनतली कैंप पर मेरे साथ भोजन ग्रहण करने की कृपा करें।

''स्वतंत्रता, समता, न्याय, बंधुता और बुद्धि प्रमाण्य या विज्ञान पर आधारित धर्म ही सच्चा धर्म है। अन्यथा धर्म के आधार पर सब ढोंग है। ऐसा आपके समाज के सबसे विद्वान नेता डॉ. भीम राव अम्बेडकर का कहना है। भीम राव अम्बेडकर आज की तारीख में देश के सबसे बड़े विद्वान हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हमें भीम राव जैसा नेता प्राप्त हुआ। हम सभी को उनका अनुसरण करना चाहिए।

16 फरवरी 1922 को अखिल भारतीय बहिष्कृत परिषद का आयोजन किया गया था। इस आयोजन में अध्यक्षीय उद्‌बोधन करते हुए शाहूजी महाराज ने कहा–

''वास्तव में इस आयोजन में अध्यक्ष पद का अधिकार भीम राव अम्बेडकर का है। आपके ही रक्त से बने हुए यह आपके समाज के ही ऐसे आदमी हैं जो पूरी तरह आप के साथ हैं। यह मुझसे ज्यादा या यों कहें आज की तारीख में सबसे अधिक पढ़े लिखे आदमी हैं। इस समय वह अपनी शिक्षा पूरी करने के लिए विलायत गए हुए हैं इसी कारण वह इस परिषद में शामिल नहीं हो सके हैं। वह जहाँ भी होंगे इसी में लगे होंगे कि किस तरह अपने देश भाइयों का कल्याण किया जा सके। (श्याम येडकर - राजर्षि

शाहू छत्रपति यांची भाषणे पृ. 79 - 81, राजर्षि शाहू राजा व माणूस पृ. 407-410)

शाहूजी महाराज, बाबा साहब से मित्रवत संबंध रखते थे। यद्यपि यह सत्य है कि बाबा साहब बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड की छात्र वृत्ति से शिक्षा अर्जित करने कई बार विदेश गए थे परंतु महाराज गायकवाड की सहायता केवल शिक्षा सहायता तक ही सीमित थी। जैसा कि उक्त तीनों घटनाओं, जहाँ से देश की राजनीति और विशेष रूप से पिछड़ों और अस्पृश्यों की राजनीति को जनमानस के सामने लाने की बात है वहीं देश के इतिहास में उक्त घटनाएँ वह आधार तैयार करती हैं जिस पर बाबा साहब आगे बढ़कर गाँधी जी की बराबरी कर गोल मेजबान कांफ्रेंस में देश का प्रतिनिधित्व कर पाने के योग्य बन पाते हैं। यह देश का दुर्भाग्य था कि शाहूजी महाराज की मुलाकात बाबा साहब से बहुत देर से हुई। यदि इन दोनों महापुरुषों की मुलाकात कुछ वर्ष पहले हुई होती शायद बाबा साहब को बड़ौदा राज्य में रहते हुए इतने दुख न झेलने पड़ते।

इतिहास गवाह है। पूना पैक्ट के समय दो वोटों और पृथक निर्वाचक मंडल का अधिकार छोड़ने के लिए कितना दबाव पड़ा था शाहूजी महाराज का व्यक्तित्व इस तरह का था कि वह गाँधीजी की प्रभावशालिता को इतना अधिक बढ़ने नहीं देते कि जो जो माँग वह पिछले 10 वर्षों से कर रहे थे और जिसके लिए उन्होंने अपना जीवन लगा दिया था उसे छोड़ने को अभिशप्त होना पड़े। यहाँ तक कि कांग्रेस के नेता विरोध में अपनी जान देने पर आ गए। यदि शाहू जी महाराज उस समय जीवित रहते तो कदाचित वर्तमान भांड प्रतिनिधित्व की व्यवस्था लागू नहीं हो पाती और समाज को उसके सच्चे प्रतिनिधि प्राप्त होते और आज यह दिन नहीं देखना पड़ता कि वर्ण-व्यवस्था फिर से लागू हो गई जिसमें पहले तो अधिकार ही नहीं था पढ़ने का, और अब बिना पढ़े 10 और 12 वीं पास हो कर वर्ण-व्यवस्था को हमारे नेता ही सशक्त बना रहे हैं।

निर्वाण : एक युग की समाप्ति

अपने सम्पूर्ण जीवन काल को मानवता की सेवा और समाज के सबसे कमजोर वर्गों के उत्थान के लिए पूरी तरह समर्पित कर देने वाले शाहू जी महाराज आधुनिक भारत की अनोखी प्रतिभा हैं। साथ ही वह देश की ब्राह्मणवादीसत्ता की नीचतापूर्ण धूर्तता और उसके साथ संघर्ष के जीवंत प्रतीक हैं। देश पर सदियों से काबिज वर्ण-व्यवस्था की सत्ता ने जिन महापुरुषों को स्वीकार नहीं किया उसमें भगवान बुद्ध और शाहू जी महाराज राजकुल से आते हैं। शाहूजी महाराज अपने सामाजिक कार्यों और विचारों से अछूत और पिछड़े समाज के उद्धारक के रूप में प्रसिद्ध हैं। माणगाँव परिषद से इस मशाल को उन्होंने बाबा साहब के हवाले कर दिया था। 13 और 14 फरवरी 1922 को वह दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय अछूत परिषद को संबोधित करते हुए डॉ. अंबेडकर को भविष्य के भारत का शिल्पी बताया था।

शाहूजी महाराज सामाजिक संबंधों के साथ-साथ पारिवारिक संबंधों का भी बहुत ध्यान रखते थे। 30अप्रैल 1922 में बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड की पौत्री और महाराजा फत्ते सिंह की बेटी की शादी से वापस आनें के बाद उनके स्वास्थ्य में गिरावट आने लगी थी। वह काफी थकान महसूस करने लगे थे। दो दिन बड़ौदा में आराम करने के बाद वह 4 मई को मुंबई पहुँचे। डाक्टरों ने वहाँ उनकी जाँच पड़ताल की। इस समय डॉक्टरों ने उनके स्वास्थ्य में कोई विशेष समस्या नहीं पाई परंतु चिकित्सीय देखरेख के कारण वहीं मुंबई के पन्हाला गेस्ट हाउस में ही रुक गए। उन्हें ऐसा लग रहा था कि अब बहुत काम हो गया। अब स्थाई रूप से विश्राम करने का समय आ गया है। उन्होंने अपने अंतिम समय अपने साथियों से कहा–''साथियों अब मुझे जाना है किसी भी बात का मुझे अफसोस नहीं है, सभी को मेरा आखिरी सलाम कर देना, अलविदा।

राजा कहीं प्रजा को सलाम करता है वह भी बीसवीं सदी में। परंतु प्रजा

को आखिरी सलाम करने वाले केवल शाहूजी राजा हैं भारतीय इतिहास में। उन्होंने प्रजा और राजा में केवल मनुष्यत्व देखा। क्या अर्थ होता है मनुष्य का उसे जन जन तक उतारा सदियों से ईश्वर के नाम से जन्मजात अभिशप्त बहुसंख्य जनता को यह बता कर दिखा दिया कि तुम भी आदमी हो, तुम्हें भी अधिकार है, पढ़ने लिखने और सिर उठा कर ससम्मान जीवन जीने का!

इस तरह मुंबई के पन्हाला गेस्ट हाउस में 06 मई 1922 को सुबह दिन उगने से पहले मात्र 48 वर्ष की अल्पायु में ही हमारे देश के करोड़ों देशवासियों के सौभाग्य का सूर्य अस्त हो गया। महाराज के पार्थिव शरीर को पूना सतारा मार्ग से कोल्हापुर ले जाया गया। बहुत शानदार अंतिम यात्रा थी महाराजा की जगह-जगह हजारों की संख्या में लोग हाथ बांधे खड़े थे, घंटो इंतजार कर रहे थे अपने उद्धारक राजा की अंतिम झलक पाने के लिए। पूरे कोल्हापुर राज्य में शमशान सी शांति छाई हुई थी। हर आदमी यही महसूस कर रहा था जैसे उसका अपना पिता छोड़कर चला गया हो हमेशा के लिए। लोग फूट-फूट कर रो रहे थे कि महाराज ने बहुत जल्दी हमें असहाय कर दिया। देश में किसी भी बड़े से बड़े नेता को भी इतना सम्मान अब तक नहीं मिला था। इतनी लंबी और भव्य अंतिम यात्रा! कोल्हापुर शहर तो मानो उनका साथ न छोड़ने के लिए उमड़ पड़ा हो और घाट पर ही पहुँच गया हो अपने महाराजा को विदा करने के लिए। पूरे राजकीय शाही सम्मान से महाराज का अंतिम संस्कार संपन्न हुआ। उनकी इच्छा के अनुसार ब्राह्मण पुरोहितों को इस कार्यक्रम में नहीं बुलाया गया था। उनके अंतिम संस्कार के समय उनके पुत्र राजाराम और विधवा रानी लक्ष्मी बाई ने कहा था–''परिणाम कुछ भी हो हमें उसकी परवाह नहीं हम महाराज के विचारों के प्रति हमेशा वफादार रहेंगे और महाराज की इच्छानुसार उनके कार्यों को आगे बढ़ाते रहेंगे।''

डॉ. आर.बी. वर्मा

उत्तर प्रदेश सरकार के वरिष्ठ वित्त एवं लेखाधिकारी पद से सेवा निवृत्त होकर सामाजिक कार्यों में आद्योपांत संलग्न डॉ. आर.बी. वर्मा अत्यंत प्रखर लेखक और ओजस्वी वक्ता हैं। जनपद अंबेडकर नगर के मूल निवासी डॉ. वर्मा छात्र जीवन से ही सामाजिक कार्यों से जुड़े हुए है संप्रति जनपद गोंडा में निवास कर रहे हैं। आप के द्वारा 'राष्ट्र निर्माता लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल' तथा 'वैज्ञानिक धर्म ही वास्तविक मानव धर्म' नाम से दो कृतियों की रचना की जा चुकी है। डॉ. वर्मा, बाबू राम स्वरूप वर्मा द्वारा स्थापित अर्जक संघ से सक्रिय रूप से जुड़े हुए हैं और राष्ट्र निर्माण के वृहत कार्य में संलग्न हैं।

मो. 9984131333

श्री जे.पी. पासवान

श्री जे.पी. पासवान ग्राम ताहिरपुर पो. कलवारी जनपद बस्ती के निवासी है। संप्रति एच.आर. इंटरमीडिएट कॉलेज, खलीलाबाद जनपद संत कबीर नगर में प्रवक्ता के पद पर कार्यरत हैं। श्री पासवान जी की शिक्षा दीक्षा अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद एवं इलाहाबाद विश्विद्यालय इलाहाबाद से पूरी हुई। सामाजिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी, प्रारंभ से ही आपका प्रिय कार्य रहा है। आपका कार्य व्यवहार और कार्यशैली इस तरह की रही है कि समाज में शोषितों, पिछड़ों, दलितों और विशेष रूप से इन संवर्गों की महिलाओं का सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक उत्थान मानो जीवन का ध्येय हो। छात्र जीवन से ही आप बाबा साहब और शाहू जी महाराज की शिक्षाओं और कार्यों के प्रचार-प्रसार के लिए पूरी तरह कटिबद्ध रहे हैं। आरक्षण और सामाजिक न्याय के जनक शाहूजी महाराज के जीवन संघर्षों से प्रभावित हो कर यह पहली पुस्तक की रचना देश के प्रखर विद्वान डॉ. आर.बी. वर्मा के साथ मिल कर पूर्ण की है।

मो. 9838224131

धम्मा प्रकाशन
16/12 त्रिलोकपुरी, दिल्ली 110091
फोन : 9210122842, 7042559521
ई-मेल : dhammaprakashan@gmail.com

ISBN : 978-93-93375-08-7